जो पाँच वर्ष की आयु से लेकर २५ वर्ष की आयु तक निकलते रहते हैं।

चमड़े को छूने से बहुत जगह हमको मांस का लचलचापन मालूम होगा। मांस के इस भाग का नाम स्नायु है। स्नायुओं पुट्ठों द्वारा ही हम अपने हाथ सिकोड़ सकते हैं, फैला सकते हैं, जबड़े हिला सक्ते हैं, आँखें बन्द कर सकते हैं।

हम इस पुस्तक में शरीर सम्बन्धी विशेष ज्ञान का वर्णन नहीं करना चाहते। न मुझे स्वय उतना ज्ञान ही है। बात भली-भाँति समझ में आ जाने योग्य वर्णन किया जायगा। अब शरीर के मुख्य भागों पर विचार करना चाहिए। सबसे मुख्य भाग पाकाशय अथवा मेदा (कोठा) है। इसके क्षणभर भी आलस्य करने से हमारा सारा शरीर ढीला और शिथिल हो जाता है। मेदे पर हम जितना भार डालते हैं उतना सहने की ताक़त बड़े बड़े विकराल जन्तुओं में भी नहीं होती। मेदा भोजन को पचाकर उसके द्वारा शरीर का पोषण करता है। इस भाग से शरीर को वही सहायता मिलती है जो रेलगाड़ी को एञ्जिन के बैलट से। मेदा पसलियों के अन्दर बायीं ओर होता है। इसमें अनेक क्रियाएँ होकर भिन्न भिन्न प्रकार के रस तैयार होते हैं और भोजन का तत्व खिचता है। बचा हुआ निकम्मा पदार्थ मल मूत्र बनकर आँतों के रास्ते बाहर निकल जाता है। इसके ऊपरी हिस्से में हृदय है। मेदे के बायीं ओर तिल्ली है। यकृत पसलियों के अन्दर

दाहिनी ओर है। इसका काम पित्त पैदा करना है। यह पित्त पाचन क्रिया के लिए बहुत ही उपयोगी होता है।

अब देह के आधाररूप, बहने वाले खून पर विचार करना चाहिए। खून से हमारा पोषण होता है। वह भोजन में से पोषक भाग को खींचकर निरुपयोगी भाग को मल मूत्र के रूप में बाहर निकाल देता और सारे शरीर को गरम रखता है। खून शरीर के अन्दर की नालियों नसों द्वारा सदा फिरा करता है। खून की गति के कारण ही हमारी नाड़ी एक मिनट में लगभग ७२ बार चलती-उछलती। बच्चों की नाड़ी तेज चलती हैं। बूढ़ों की सुस्त।

खून की सफाई का सबसे बड़ा साधन हवा है। शरीर में चक्कर लगाकर जो खून फेफड़ों में जाता है वह निकम्मा हो जाता है उसमें जहरीले पदार्थ पैदा हो जाते हैं। जो हवा भीतर जाती है वह इन जहरीले पदार्थों को खींच लेती है और अपने में मिली हुई प्राण-वायु खून को दे देती है। यह क्रिया सदा होती रहती है। भीतर गई हुई हवा खून के जहरीले पदार्थ लेकर बाहर निकल आती है और प्राणवायु खून में मिलकर नसों के द्वारा सारे शरीर में चक्कर लगाया करता है। इससे समझा जा सकता है कि बाहर निकली हुई साँस कितनी जहरीली होती है। हवा का प्रभाव हमारे शरीर पर बहुत अधिक पड़ता है।

हमारा स्वास्थ्य

सामान्यतः मनुष्य उन मनुष्यों को आरोग्य समझते हैं जो खाते-पीते चलते-फिरते और वैद्यों को घर पर नहीं बुलाते। किन्तु विचार करने पर मालूम होता है कि यह उनकी भूल है। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं, जो खाने-पीने आदि के सभी व्यापार करते हुए भी रोगी हैं किन्तु अपने को रोगी नहीं समझते और साथ ही रोग की परवा भी नहीं करते। निरोग मनुष्य संसार में बहुत ही कम है।

"एक विदेशी लेखक का कहना है कि निरोग मनुष्य वे ही होते हैं, जिनके पवित्र शरीर में शुद्ध मन आवास करता हो। शरीर का नाम हो मनुष्य नहीं, शरीर तो उसका निवास-स्थान है। मन और इन्द्रियों का शरीर के साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि एक के बिगड़ने से दूसरों के बिगड़ने में जरा भी बिलम्ब नहीं लगता। शरीर को गुलाब के फूल की उपमा दी गयी है, अर्थात् गुलाब का फूल शरीर है और उसमें रहने वाली गन्ध उसकी आत्मा है। कागज के बने हुए नकली गुलाब के फूल की उतनी कदर नहीं होती जितनी कि असली और सुगन्धयुक्त की। क्योंकि सूँघने पर निर्गन्ध-पुष्प से सुगन्ध नहीं आयगी। वह तत्व गन्ध नहीं। जिस प्रकार मनुष्य गन्धहीन पुष्प को पसन्द नहीं करते, प्रत्युत फेंक देते हैं, उसी प्रकार उस मनुष्य से भी कोई प्रेम नहीं करता

जो देखने में तो ऊपर से अच्छा प्रतीत होता है और इसके भीतर के व्यवहार अच्छे न हो। चरित्रहीन मनुष्य निरोग नहीं होते। जिसका शरीर स्वस्थ हो वह अवश्य पवित्र-मन होगा। क्योंकि मन के ही अनुकूल मनुष्य कर्म करता है उसीका प्रभाव सब शरीर पर रहता है। पाश्चात्य देशों में इस मत का एक पन्थ है। उसका यही सिद्धान्त है कि जिसका मन शुद्ध होता है उसके शरीर में रोग होते ही नहीं और यदि हो भी जायँ तो मनोबल के योग से हटा भी दिये जाते हैं। सार यही है कि आरोग्यता का सबसे बड़ा साधन मन ही है। अतएव मन की शुद्धि से ही आरोग्यता प्राप्त होती है।

तामस-भाव, आलस्य और बहरापन ये सब रोग के ही लक्षण हैं, कई एक डाक्टर चोरी आदि को भी रोग ही मानते हैं। विलायत में अनेक धनिक-स्त्रियाँ भी छोटी छोटी चोरी करती पायी गयीं। जिनकी डाक्टरी परीक्षा करायी जाने पर, डाक्टरों ने "क्लेप्टेमेनिया', की बीमारी बतलायी। कोई मनुष्य स्वभाव से ही खूँख़ार होते हैं। उन्हें बिना खून किये चैन नहीं पड़ता। यह भी एक प्रकार का रोग है।

अब यह कहा जा सकता है कि जिनका शरीर सब इन्द्रियों से पूर्ण है अर्थात् आँख, नाक, कान आदि सभी पूर्ण हैं और उनमें किसी प्रकार का विकार नहीं, अँग-प्रत्यंग सुडौल सुन्दर जिनसे किसी प्रकार की बदबू नहीं आती और मन स्वाधीन है वे ही

निरोग हैं। स्वास्थ्य प्राप्त कर लेने पर भी उसका भोगना सरल नहीं। माता-पिता का रोगी होना भी हमारे रोग का कारण है। 'माता पिता यदि निरोग होकर सन्तान पैदा करें तो उनकी सन्तान उनसे कहीं अधिक स्वस्थ और बलवती हो। विकाशवादी इस बात को मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि रोगरहित पुरुष को मृत्यु का भय नहीं लगता। मृत्यु से हमारा अत्यन्त डरना, यह सिद्ध करना है कि हम रोगी हैं। इस लिए ऊपर दिखाये हुए स्वास्थ्य लाभ करने का प्रयत्न हमको सदैव करना चाहिए। क्योंकि वह हमारा परम कर्त्तव्य है।"

प्रकृत-जीवन

स्वास्थ्य लाभ से ही प्रकृत जीवन प्राप्त होता है, यह नियम-सिद्ध बात है। प्रकृत-जीवन ही यथार्थ जीवन का नाम है। जहाँ असली जीवन है वहाँ सुख सम्पत्ति अधिवास करती है, अन्यथा रुग्ण अवस्था में जैसा आज सार्व-भौम दु:ख दिखायी देता है, उसका चित्र-पट स्पष्ट ही है।

रोग का कारण

रोग का कारण वैद्यक शास्त्र में बतलाया गया है शरीर में रहने वाले मलों का कुपित होना। जैसा कि लिखा है—

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मला।
मिथ्याहारविहाराभ्यां जायन्ते दूषिता मलाः॥

वात, पित्त, कफ, जब इनमें से कोई बढ़ जाता है तब ज्वर, फोड़ा, फुन्सी किसी न किसी प्रकार का रोग उत्पन्न हो जाता है। इन तीनों दोषों के कुपित होने के कारण मिथ्या आहार-विहार—अर्थात् भोजन, अति उष्ण, अति शीत अथवा इन दोनों का मिश्रण और मन भी है। जिनका क्रमश. आगे विचार किया जायगा।

नवजात शिशु का स्वास्थ्य

बालक जब गर्भ में रहता है उस समय उसकी स्वस्थता का पता नहीं चलता। जब वह उत्पन्न होता है तब उसके रोग और निरोग होने का पता लगता है। यदि वह रोगी होता है तो वह रोग उसके वर्त्तमान दोष से नहीं होता। किन्तु वह उनके माता-पिता के रज-वीर्य के दूषित होने से होता है। स्त्री-पुरुष का रोग उनके रज-वीर्य में बराबर रहता है, जो सन्तान को उत्पन्न होने पर सताता है। इस लिए यदि माता पिता बच्चे का स्वास्थ्य चाहें तो वे गर्भाधान के पूर्व स्वयं पूर्ण आरोग्य लाभ कर लें, नहीं तो पुत्र के कष्ट का पाप उन्हें अवश्य भोगना पड़ेगा। इसीलिए शास्त्रकारों

ने राजयक्ष्मा, मृगी आदि भयंकर रोगियों के विवाह तक का साफ/निषेध किया है।

बच्चे की औषध माता को

बच्चा जब बीमार होता है तो उसकी माँ को दवा दी जाती है। इसका कारण साफ देखा गया कि माँ को अजीर्णता होने से बच्चे को भी अजीर्णता हो जाती है अर्थात् उसको दूध नहीं पचता या डाल देता है और या दस्त हो जाते हैं। यही परिणाम बदहजमी का हर एक मनुष्य को होता है, दस्त या वमन। माता के दूध में शीत या वायु बढ़ जाने पर बच्चे को ज्वर या पेट फूल आता है। ऐसी अवस्थाओं में माता को दवा देकर माँ को निर्दोष किया जाता है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि भोजन दूषित होने से ही रोग उत्पन्न होता है। कभी कभी माता के अधिक रोगी हो जाने पर माँ का दूध छुड़ाकर गाय का दूध दिया जाता है। वहाँ भी इस बात का ध्यान रखना परम आवश्यक है कि वह दूध भी दूषित तो नहीं है। प्रायः लोग इस बात का ध्यान नहीं रखते यह उनकी भूल है।

अन्न भोजन

जब तक बच्चे के दाँत नहीं होते तब तक भगवान ने उसे दूध पीने को दिया और जब उसके दाँत निकल आते हैं तब उसे दाँतों से कुछ चबाने की आवश्यकता होती है, इसलिए अन्न दिया। अन्न के खाने से दाँतो पर मैल जम जाता है जो अन्न का पिसा हुआ सूक्ष्म भाग होता है। उसका साफ न कर देना बड़ा हानि-कारक है।

दन्तधावन और उसकी विधि

नीम, बबूर या और किसी वृक्ष की जिसकी कूची बन सके ले लेनी चाहिए, जो बारह अँगुल से कम न हो और साफ सीधी मुलायम ताजी होनी चाहिए। वह दो-तीन अँगुल एक सिरे से चिरी हुई हो। जो सिरा चिरा हुआ नहीं है उसको दाँतों और दाढों से खूब चबाये यहाँ तक कि उसकी कूची मुलायम बालों के समान बन जाय। तब उसे दाँतों पर घिसे धीरे-धीरे सब दाँत और दाढ़े साफ और चमकदार हो जायँ। जब दांत साफ हो जायँ तब जिस ओर दतौन चीरी हुई थी उस ओर से चीर कर दो भाग कर दे। तत्पश्चात् उन दो भागों में से एक भाग को लेकर उसके दोनों सिरे दोनों हाथों की अँगुलियों से दबाकर धनुष के समान गोल कर ले और चिरा हुआ हिस्सा नीचे की ओर रखकर जीभी करे अर्थात् जबान को बाहर निकाल कर

उसके मूलभाग से अग्रभाग की ओर को दतौन को धनुषाकार रख-कर खींचे जिससे जिह्वा का सब मैल साफ हो जाय। इस विधि से दतौन करने पर आँख, मुँह, नाक कान आदि सभी अवयवों से मल निकल जाते हैं और बादी का पानी भी कभी कभी अधिक परिमाण में पेट से निकल आता है। सामान्य रूप में तो प्रति दिन निकलता ही है।

दन्तधावन के लाभ

दातों में कीड़ा नहीं लगेगा, मुँह से बदबू नहीं आयगी। पाचनशक्ति बढ़ जायगी, पेट का कोई रोग नहीं होगा। कारण यह है कि प्रतिक्षण मुँह में थूक आता रहता है और दातों की जड़ों में से होकर ओठों से टकरा कर भीतर लौट जाता है। फिर वह कण्ठ से नीचे उदर में पहुँच जाता है। तथा भोजन के हजम होने में बड़ी सहायता करता है। साफ कहना चाहिए कि वही लार मुख में दातों की रगड़ के संसर्ग से अमृत बन जाती है और अमृत कूप जहाँ उस लार के ठहरने का स्थान है वहां पहुँच जाती है। यथार्थतः जो कण्ठ में नासारन्ध्र के समीप अमृत-कूप है, उसमें जो जल तत्व का दन्त श्रेणी के संघर्ष से मधुरामृतमय भाग तैयार होता है वह जाकर ठहरता है। जिससे वह कूप सदैव भरा रहता है। योगी लोग जब जबान को लौट कर उस अमृत-कूप के पास

ले जाते हैं तब इन्हें अमृत-कूप से गिरी हुई मधुर अमृतमयी बूँद के स्वाद का आनन्द मिलता है।

जो लोग वैसा अभ्यास करते हैं उन लोगों को भी उपरोक्त आनन्द का अनुभव होता है। हम लोगों के पेट में वह बराबर बूँद बूँद होकर टपकता रहता है जो खाये हुए पदार्थ के लिए अमृत होता है। यदि दाँतों की सफाई नहीं रक्खी जायगी तो वही अमृत विष हो जायगा। क्योंकि दाँतों में सड़े हुए बदबूदार मैल से लगकर लार में विष उत्पन्न हो जाता है और अमृत कूप को विष कूप बनाती हुई पेट में पहुँच कर कीड़े, अजीर्णता आदि अनेक रोग पैदा कर देती है। इस लिये स्वास्थ्य चाहने वाले पुरुषों को हमेशा दाँत साफ रखने चाहिएँ। ताजी दतौन का रस मसूड़ों को पुष्ट करता है।

पेट की कब्ज जबान से देख ली जाती है। जब पेट में अनुचित मल का भाग होता है, तब जबान पर मैल जम जाता है। पेट के साफ रहने पर नहीं रहता। इसी लिये वैद्य लोग जबान देखते हैं। दाँत और जबान साफ रखने वाले का कभी पेट गन्दा नहीं रह सकता।
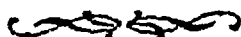
दन्त मंजन

दतौन के साथ यदि दन्त मंजन का भी प्रयोग कर लिया करें तो सोने में सुगन्ध का काम हो जाय। अर्थात् सफेद सेंधा नमक खूब बारीक पीसकर शुद्ध सरसों के थोड़े तेल में मिला लें और दतौन की कूची के सांथ अथवा अँगुली द्वारा दाँतां तथा मसूड़ों पर रगड़े। इससे मसूड़ों का कोई रोग नहीं होता और सफाई बहुत जल्दी होती है। नमक विष-हर है। जिनके मसूड़ों से खून जाता हो वे अवश्य इस मञ्जन का प्रयोग करें। उन्हें तत्काल इसका लाभ मालूम होगा और कुछ दिन प्रयोग करने पर यह रोग सदैव के लिये चला जायगा।

नेत्र स्नान

दन्त धावन करने के बाद मुँह में पानी भरकर, एक लोटे में पानी ले और दूसरे हाथ की अँजली भरकर आँख खोल उसमें छींटे दे। एक लोटा पानी खतम हो जाने पर मुँह का पानी निकाल दे और फिर उसी प्रकार दुबारा मुख में पानी भरकर आँखों में छींटे दे। इस प्रकार कम से कम दस सेर पानी काम में लाना चाहिये। इसका फल यह होगा कि नेत्रों की ज्योति बढ़ेगी और गयी हुई रोशनी भी फिर से लौट आयेगी। मस्तक की स्मरण शक्ति बढ़ेगी, सिर दर्द आदि सिर के सभी प्रकार के रोग नष्ट होंगे। सिर के काले बाल असमय में सफेद न होने

पायेंगे। यदि सफेद हो गये हों तो इसके कुछ वर्ष लगातार प्रयोग से फिर काले हो जायँगे। दाँत मजबूत होंगे। नेत्रों का दुःखना, जल गिरना, या सुर्खी आ जाना, धुँधला, झाँयी, माड़ा, फुल्ली आदि एक भी रोग न होने पायगा और जिनके ये रोग हों यदि वे भी इसका निरन्तर प्रयोग करें तो उनको भी अवश्य फायदा होगा।

सर्वस्नान

नेत्र स्नान के बाद सम्पूर्ण देह का स्नान कर डालना चाहिये। स्नान कुएँ के ताजा जल से करना चाहिए क्योंकि वह ऋतु अनुसार गरम-सर्द बना रहता है। जैसे लिखा है—

कूपोदक वटच्छाया नारीणाञ्चपयोधरम्।
शीतकाले भवेदुष्णमुष्णकाले च शीतलम्॥

अर्थ—कुएँ का जल, वटवृक्ष की छाया तथा स्त्री-पयोधर उष्णकाल में स्वभाव से शीतल और शीतकाल में गरम हो जाते हैं। इस लिए कुएँ के जल से खूब मल-मलकर नहाना चाहिए। सबसे पहले शिर पर जल डालकर उसे अच्छी प्रकार धोना चाहिए और फिर हाथ कमर और पेट पर पानी डालकर मले। तत्पश्चात् शेष अंगों पर। इस प्रकार स्नान करने से शिर आदि सब अँगों की गरमी पाँव की राह से नीचे को निकल जाती है। इसके विपरीत करने पर उलटा परिणाम होता है अर्थात् निरोग के स्थान

पर रोग आ घेरते हैं। क्योंकि पाँव और उदर आदि की गरमी मस्तक पर आ चढ़ती है जिससे शिर-दर्द, बुद्धि-मान्ध आदि शिरोरोग हो जाते हैं। यदि किसी नदी में स्नान करना हो तो वहाँ भी किनारे पर पहले सिर धो कर क्रमशः सब अँगों को भिगोवे, तब नदी में उतर जाय फिर कोई हानि नहीं होगी। उसके बाद मोटा गमछा या तौलिया को भिगोकर शरीर के सब अवयवों पर मलने से मैल अच्छा साफ होता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि बाल न टूटने पाये। स्नान के बाद गमछा निचोड़ खूब अच्छी तरह पोंछ डालना चाहिए। जिससे कहीं पानी न रहने पाये, अन्यथा पानी रहने पर दाद होने का डर रहता है। इस प्रकार स्नान करने से शरीर के रोमकूपों के छिद्र खुल जाते हैं जिससे पसीना अच्छी तरह अन्दर से बाहर निकल सकता है जो शरीर को सुन्दर और रोगहर बनाता है।

साबुन से स्नान

महीने में दो चार बार अच्छे साबुन से स्नान कर लेना चाहिए। अच्छे साबुन के माने जो शरीर की त्वचा को फाड़ न दे और न इतना रूखा ही हो कि शरीर पर सिमटन पड़ जायँ। चर्बी का साबुन कभी न लगाना चाहिए, क्योंकि वह शरीर के छिद्रों को खोलता नहीं प्रत्युत उन्हे और बन्द कर देता है। जिससे पसीने का आना बन्द हो जाता या बहुत ही कम हो जाता है।

लगाने वाले समझते हैं कि साबुन बहुत अच्छा है। यथार्थ में वह बहुत ही नुकसान देनेवाला है। ऐसी राय डाक्टरों की है। और दूसरा अपवित्र भी है। बिना जानवरों के मारे चर्बी नहीं मिलती। चर्बी के लिए जानवर मारे जाते हैं। इसलिए चर्बी का साबुन व्यवहार करने वालों को उन पशुओं की हत्या का भागी भी बनना पड़ेगा अतएव चर्बी का साबुन सब तरह से वर्जित है।

तैल मर्दन

तैल खाने की अपेक्षा शरीर पर मर्दन करने में घी खाने से भी कई गुणा अधिक शक्ति प्रदान करता है। शरीर पर कान्ति खाल पर चमक और मजबूती के साथ मुलामियत लाता है। स्फूर्ति हलकापन और नैरोग्यता प्रदान करता है। देह में खसरा खुजली आदि रोगों को उत्पन्न नहीं होने देता। अंगों को मोटा और सुडौल करता है। बुढ़ापे तक अंगों को जकड़ने नहीं देता। चाहे कितना भी परिश्रम किया हो उसकी थकावट क्षणों में दूर करता है।

विधि

तैल को मालिश करने के लिए दो आदमियों की आवश्यकता है। एक तेल मलने वाला और दूसरा मालिश करवाने वाला। किसी अच्छे स्वच्छ खुले स्थान में बैठकर जहाँ तेज हवा न आती हो मालिश करें। मालिश में कडुआ तेल काम में लाना चाहिए। शुद्ध कडुआ सरसों का तेल छटाँक डेढ़ छटाँक लेकर साफ कपड़े से छान ले। तत्पश्चात् मालिश करने वाला दोनों हाथों में लगाकर जिसके मालिश करनी हो उसके सिर में तालू पर लगाकर एक हाथ की हथेली से घर्षण करे फिर दूसरे हाथ से। इसी प्रकार जल्दी-जल्दी हाथ बदलता जाय जिससे हाथ गरम न होने पाये और तेल रमता जाय हाथों की तली गरम होने से दोनों को नुकसान है अर्थात् मस्तक में गरमी पहुँचने से बुद्धि की हानि और बालों के संघर्ष से एक प्रकार की विद्युत पैदा होती है जो हाथ की हथेलियों के मार्ग से मर्दनकर्त्ता के मस्तक में हानि पहुँचाती है। कनपुटियों को अंगुलियों के अग्रभाग से मर्दन करे। तत्पश्चात् गर्दन और बाहों को मले। धीरे-धीरे जब गरम हो जाय तब बल पूर्वक मर्दन करे। इसी प्रकार सब अंगो में सब तेल रमा दे। डेढ़-दो घण्टे के बाद जब अच्छी प्रकार ठण्ढा हो जाय तब साबुन से स्नान करे। इस प्रकार तैल मर्दन किया हुआ उपरोक्त फल देता है।

शौच

प्रात काल रात्रि के चौथे प्रहर में अर्थात् चार बजे उठकर सबसे पहले बिस्तर पर बैठकर पाँच मिनट तक ईश्वर का ध्यान करे और फिर कुल्ला कर बासी मुँह डेढ़ पाव या आध सेर पानी पीकर टहले। इससे पाखाना साफ आयेगा और कब्ज नहीं होगी। पहले पहल सर्दी हो जाने का डर है। किन्तु उसकी परवाह न करनी चाहिए, वह स्वयं अच्छी हो जायगी। शौच होकर आव-दस्त ले लेने पर मूत्रेन्द्रिय की खाल हटाकर ठण्डे पानी से अच्छी तरह धो डालना चाहिए। इसके बाद दतौन, स्नान आदि करना चाहिए। तत्पश्चात् सन्ध्या सूर्य उदय से पूर्व तारो की छाया में समाप्त कर देनी चाहिए इतने काम सूर्य उदय के पूर्व अवश्य हो जाने चाहियें। सन्ध्या का फल आदि आगे बताया जायगा।

लघुशङ्का

प्राचीनकाल से यह बात चली आती है कि जब कोई पेशाब जाता है तब एक पात्र में जल ले जाता है। पेशाब हो लेने के बाद इन्द्रिय को पानी से धो डालता है। कोई कोई गमछे का एक सिरा भिगोकर ले जाते हैं उसी से धो देते हैं। गमछे में जल ले जाना अच्छा नहीं, क्योंकि वह पानी हाथ की गरमी से गरम हो जाता है। ठण्डे पानी से ही धोना हितकर है। यह बड़ा ही लाभदायक है। किन्तु आज कल लोगों ने इसे केवल शुद्धि का ही

हेतु समझ रक्खा है। मुसलमान लोग एक मिट्टी का ढेला जहाँ-तहाँ से उठा लेते हैं वे भी पेशाब के बाद इन्द्रिय के मुँह पर लगा लेते हैं और कहते हैं कि पेशाब का कतरा कपड़े पर गिरने से कपड़ा नापाक न हो जाय। उन्होंने भी शुद्धि के लिए मान कर ऐसा किया। यह उनकी भूल है। क्योंकि जो ढेला वे उठाते हैं वह पहले किसी ने इस्तेमाल किया या नहीं, इसका पता उन्हें नहीं लग सकता। इस लिए सम्भव हो सकता है कि किसी गर्मी, सुजाक वाले मरीज ने उसे पहले इस्तेमाल किया हो। ऐसे ढेले के व्यवहार से क्या हानि होगी यह आप भलीभाँति समझ सकते हैं। दूसरे शुष्क मिट्टी के सम्बन्ध से वह फल हासिल नहीं हो सकता जो जल से है। देखा-देखी नक़ल और वह भी उल्टी करना अच्छा नहीं। वहाँ प्रयोजन केवल स्वच्छता ही नहीं प्रत्युत रोग नाश भी है। "एकाक्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा" "आम के आम और गुठली के दाम" इसी को कहते हैं अर्थात्—शुद्धता की शुद्धता और रोग का भी नाश।

भोजन करने का समय

प्रातःकाल १० बजे से १२ बजे तक, और सायंकाल को ८ बजे तक भोजन अवश्य कर लेना चाहिए। इसके पश्चात् भोजन करना रोगों को निमन्त्रण देना है क्योंकि सूर्य के तेज की वृद्धि के साथ-साथ हमारी जठराग्नि की भी वृद्धि होती है जो अन्न पाचन में

बड़ी सहायता देती है और सायंकाल का भोजन अत्यन्त हलका और स्वल्प होना चाहिए जो केवल जठराग्नि की सहायता से ही हजम हो जाय। जैसे थोड़ा गर्म दूध थोड़ी चीनी डालकर धीरे-धीरे घूँट-घूँट कर पीना चाहिए। दवाओं को छोड़कर रात को अधिक गर्म दूध न पीना चाहिए क्योंकि उत्तेजना पैदा कर वह स्वप्नदोष भी पैदा कर देता है।

ताजा भोजन

भोजन सदैव ताजा करना उत्तम है। बासी अन्न तमोगुणी होकर बल, बुद्धि और आयु का हरने वाला है तथा रोगकर भी होता है। इसलिए सर्वथा त्याज्य है। ताजा भोजन अवश्य हो किन्तु अत्यन्त गरम न होना चाहिए। कवोष्ण (थोड़ा गरम) अर्थात् शरीर की गरमी के समान गरम हो। लोग बहुत गरम भोजन करते, और उस पर अत्यन्त शीतल जल गरमी के दिन हो तो बरफ डालकर पीते हैं। वे बहुत ही बुरा करते हैं। क्योंकि गरम भोजन से दाँत गरम हो जाते हैं और उन पर ठण्डा पानी लगने पर गरम, सर्द मसूढ़े हो जाते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि असमय में ही दाँत हिलकर गिर जाते हैं। दूसरे पानी भी अधिक पीने में आता है जिससे बदहजमी (अनपच) रोग उत्पन्न हो जाता है। ठण्डा भोजन करने से अधिक ठण्डा पानी की विशेष इच्छा नहीं होती और न अधिक पीने में ही आता है। गरम

रोटी ठीक चबाने में भी नहीं आती, जो देर-हजम और अजीर्णता उत्पन्न करती है।

ग्रास चर्वण

एक ग्रास कितनी बार चबाना चाहिए। परमात्मा ने उसकी संख्या स्वयमेव निर्माण कर दी है अर्थात् जितने दाँत हैं उतनी ही बार यदि एक ग्रास को चवाय जाय तो वह पिसकर इतना बारीक हो जायगा कि उसका रस बहुत शीघ्र रस-वाहिनी नाड़ियें खींच लेंगी और किसी प्रकार का रोग भी उत्पन्न नहीं होगा। प्यास भी कम लगेगी। क्योंकि अधिक चवाने से मुख में लवाब बन जाता है जो कण्ठ में खुश्की पैदा नहीं होने देता। जिससे प्यास नहीं लगती और पानी कम पीने में आता है। किन्हीं का सिद्धान्त है कि भोजन में जल नहीं पीना चाहिए और घण्टा भर ठहर कर पीना चाहिए तथा कोई भोजन के मध्य में अमृत कहते हैं, जैसे कहा है—

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम्।
भोजने चामृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम्॥

अर्थ—अपच के समय जल पान औषध का काम करता है और पच जाने पर जल पान बल-वृद्धि करता है। भोजन के बीच में थोड़ा सा जलपान अमृत के तुल्य होता है और भोजन के अन्त में पानी पीना विष के समान है।

भोजन के आरम्भ मे तीन आचमन अवश्य कर लेना चाहिये उससे कण्ठ गीला हो जाता है जो प्यास पैदा नहीं होने देता। भोजन के मध्य में जल पीने से अन्न की मात्रा घट जाती है, अन्यथा अन्न का भाग अधिक हो जाने से आलस्य उत्पन्न करता है और जल आलस्य विनाश करने वाला है। अत्यन्त ग्रास चबाने से प्यास स्वयं ही कम लगती है और जो लगती भी है वह उचित ही है। उसके अनुसार जल पीना अमृत कहा गया है। यदि अधिक लगती हो तो कोई उदर विकार समझना चाहिए। तब भोजन कम कर देना उचित है। घण्टाभर के बाद जब प्यास लगे तब थोड़ा-थोड़ा कर खूब जल पीना उत्तम है। इससे उदर-विकार पच जायगा। भोजन के अन्त में भी तीन आचमन मात्र करके उठ जाना चाहिए। जिन लोगों का मत भोजन में जल का निषेध है वे भोजन के आध घण्टा पूर्व जल का विधान करते हैं। उनके विधान का भी यही आशय निकलता है कि अन्न की मात्रा घटायी जाय। क्योंकि जब पेट में जल रहेगा तो सुतरां अन्न कम खाया जायगा।

दन्त-घर्षण

भोजन के बाद मुंह में पानी भरकर मुख की वायु की ठोकर से पानी के घर्षण द्वारा दाँतों को साफ करे और बीच-बीच में अँगुली के अग्रभाग से खूब रगड़े, जिससे दाँत अन्दर बाहर से अच्छी तरह स्वच्छ हो जावें। इस प्रकार उन्नीस-बीस बार दन्त-घर्षण करें। इससे दाँत साफ होते हैं और भोजन के दमोभाग

का सिर में असर नहीं होता तथा जो आ भी गया होता है, वह भी नष्ट होकर इन्द्रियों में जागृति आ जाती है और शिर के उत्पन्न अनुत्पन्न सभी तरह के रोगों को लाभ पहुँचाता है। इसके बाद सम्पूर्ण मुँह को धोकर "खानि स्पर्शयेत्" सब इन्द्रियों को ठण्ढे जल से स्पर्श करे। तत्पश्चात् शुद्ध पात्र में जल लेकर पेशाब जाय और मूत्रेन्द्रिय को जल से धो डाले बाद पाँव धोये, पहले नहीं। पहले पाँव धोने से तामसी गुण ऊपर की ओर चला जाता है। किन्तु अब नहीं जा सकता। क्योंकि ऊपर से नीचे की ओर उसका वेग होकर मूत्र द्वारा नीचे निकल जायगा और फिर पाँव धोने से कोई हानि नही, प्रत्युत लाभ ही लाभ है।

भोजन का परिमाण

एक स्वस्थ साधारण मनुष्य के लिए ३२ ग्रास और कसरती के लिए ४० ग्रास तक भोजन करना चाहिए। क्योंकि परमात्मा ने बत्तीस दाँत दिये हैं इस लिए बत्तीस ही ग्रास उचित हैं यदि अधिक बलवान कसरती मनुष्य है तो सवायी मात्रा ४० ग्रास रक्खी गयी है। रोगी के लिए आधी अथवा यथोचित खुराक होनी चाहिए। एक ग्रास एक तोलाभर का होना उचित है इससे अधिक नहीं। चालीस तोले का आध सेर और बत्तीस का डेढ़ पाव तैयार अन्न होता है। इतना एक व्यक्ति के लिए पर्याप्त है। एक मसल है "आध पाव रोगी, पावभर भोगी, आध सेर मर्द, और सेर भर बर्ध" आध सेर से ऊपर सिवाय पेटू के और कौन खा सकता है।

किन्तु जिनको दुग्धादि पदार्थ प्राप्त नहीं हो सकते उनकी खुराक अधिक बढ जाती है, क्योंकि तर पदार्थ स्वभावतः अन्न का भाग कम कर देते हैं। इसी लिए आजकल लोगों की खुराक अधिक बढी हुई है क्योंकि उन्हें घी दुग्ध आदि तर पदार्थ प्राप्त नहीं हो रहे। अत: शुष्क खुराक बढ रही है। इसका परिणाम सिवाय रोग के और क्या हो सकता है। इसी लिए उदर विकारों के रोग का प्रकोप हर ओर दिखायी दे रहा है। यह भी मिथ्याहार कहाता है। दुग्ध घी की रक्षा के लिए गोरक्षा की परम आवश्यकता है। इसमें वनस्पति आदि का घी दुग्ध काम न कर सकेगा। प्रत्युत उससे हानि ही होगी।

आहार विचार

फलाहार, दुग्धाहार, अन्नाहार, माँसाहार, रक्ताहार, मृत्तिकाहार, काष्ठाहार, रसाहार, पवनाहार इस प्रकार मिलाकर नौ प्रकार के आहार होते हैं। ये उपरोक्त आहार संसारी जीवों के हैं। जिन में से पहले के चार प्रसिद्ध और उत्तर के पाँच अप्रसिद्ध हैं। इस लिए हम उलटी ओर से विचार करेंगे।

पवनाहार

सर्प का मुख्य आहार पवन है। वह मिट्टी और ओम भी चाटता है। ऐसा अनुभवी लोगों का कहना है कि—

"सर्पापिवन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते,
कन्दैर्फलैर्मुनिवराः क्षपयन्तिकालम्"

इत्यादि वचनों से सर्प का पवन भक्षी होना स्पष्ट सिद्ध होता है। इसी प्रकार गोजर, कानसलाई, बिच्छू आदि भी वायु-भक्षी हैं। ये बड़े हितकारी जीव हैं क्योंकि वायु में रहने वाला विष ही इनकी खुराक है, जो हम लोगों के शरीर से मल मूत्र और श्वासादि द्वारा निकला हुआ विष वायु में मिला होता है उसे ही ये खाते हैं इसी लिए ये गन्दे स्थानों पर ही रहते हैं और साफ स्थानों पर नहीं। यदि आप अपने घर साफ सुथरे रक्खेंगे तो वे वहाँ नहीं आयँगे क्योंकि वहाँ उनकी खुराक नहीं मिलती। जब नये अन्न, शाक-पात घास आदि उत्पन्न होते हैं उस समय उनमें विष होता है उस कच्ची विषैली घास को जो पशु खाता है, उसका पेट फूल जाता है और वह मर जाता है। रात को जब ओस उन पर पड़ जाती है तो उन घासादि का विष पत्तों पर पड़े ओस के विन्दुओं में आ जाता है जिसे सर्प बड़े प्रेम से चाट लेता है। इसी लिए किसी जीव को नहीं मारना चाहिये। क्योंकि परमात्मा ने इन्हें हमारे हित के लिए रचा है।

रसाहार

जो जीव केवल रस पीकर ही जीते हैं उनको रसाहारी कहते हैं। जैसे शहद की मक्खी, भ्रमर आदि। ये सदैव फूल पत्तों आदि के रसों को चूसते है और अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

काष्ठाहार

काष्ठाहारी वे जीव हैं जो काष्ठ खाकर अपनी जीवन यात्रा

पूरी करते हैं। जैसे घुन या काष्ठ का कीड़ा जो काष्ठ में रहता और काष्ठ ही खाता है। व्हाइट आंट अर्थात् काठ में रहने वाले सफेद कीड़े दीमक आदि।

मृतिकाहार

मृतिकाहारी वे ही जीव हैं जो मिट्टी खाते हैं। वे प्राय बरसात में पैदा होते हैं। जैसे घेसा, (केचुआ) आदि, जब वे हगते हैं तो उनका पाखाना रात को चमकता है। यह भगवान की अद्भुत महिमा है।

रक्ताहार

रक्ताहारी वे जीव हैं जो केवल रक्त पान करके जीवन धारण करते हैं। जैसे जूँ, खटमल आदि। इस प्रकार के जीव प्राय॰ प्राणियों के शरीर पर रहते हैं।

मांसाहार

मांसाहारी वे ही जीव हैं जो केवल अपना जीवन मांस से ही यापन करते हैं। जैसे शेर, चीता आदि जो प्राय. जंगलों में रहते हैं और जल में भी।

अन्नाहार

अन्न पर जिनका जीवन निर्भर है वे अन्नाहारी हैं। अर्थात् मनुष्यादि अनेक जीव हैं।

दुग्धाहार

मनुष्य का दुसरा भोजन दुग्ध है। प्रायः अन्न के साथ इसे दुध का आहार करना पड़ता है। क्योंकि इसके विना रूक्ष भोजन अधिक खाना पड़ता है। जो हानिप्रद होता है। दूध के विना घी भी नहीं मिल सकता जो परमावश्यक है। अस्तु—यह रहा मिलिताहार। जब मनुष्य को योग्याभ्यास की आवश्यकता पड़ती है तब अन्न भारी और मलावह होता है—उस समय दुध ही उत्तम आहार होता है जो तर, पुष्ट और हलका होता है। बचपन में तो अनेक जीव दुग्धाहारी होते हैं। किन्तु फिर नहीं रहते। मनुष्य हीं बुद्धि बल से अपनी लाभदायक वस्तुओं का संग्रह कर लेता है यही इसमें पशु आदि से विशेपता है। इसी लिए इसे मनुष्य कहते हैं।

फलाहार

यह सबसे उत्तम आहार है। क्योंकि प्रकृति इन्हें बनाती है। जमीन से पानी खिचकर स्वच्छ छना हुआ जिसमें किसी प्रकार का विकार नहीं रहता वह फल में संचित होता है और सूर्य की किरणों के ताप से पकता है। जिस वस्तु पर सूर्य का प्रकाश और सूर्य की गरमी तथा चन्द्र की सुधावर्षिणी रश्मियों का संसर्ग हुआ हो तथा जिसने वायु के पवित्र झोकों में कई महीने दिन रात अठखेलियाँ की हों, वह अमृत रस भरा प्रकृति देवी का पैक किया

हुआ ताजा फल, जब हमें मिले तब भला उसकी बराबरी कौन कर सकता है। सबसे अधिक स्वास्थ्यप्रद, बल और तेज को देने वाला है। बानर को देखो कितना छोटा होता है और बड़े से बड़े पेड़ को हिला डालता है। छोटी-छोटी भुजाओं के बल कितना लम्बा कूदता है। तथा कितनी फुरती रखता है। वह अधिक फलों का ही सेवन करता है। अन्न की अपेक्षा इससे मल बहुत कम तैयार होता है। अधिक से अधिक लाभ देने वाली वस्तु हमें फलों से मिलती है। फलों से कन्द, मूल, शाक पात, आदि सभी का ग्रहण हो जाता है।

भक्ष्याभक्ष विचार

भक्ष्याभक्ष दो प्रकार का होता है। एक धर्मशास्त्रोक्त और दूसरा वैद्यकशास्त्रोक्त, जैसे धर्मशास्त्र में—

अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च। म० ५।५

द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को भी मलीन विष्टा मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक फल मूलादि न खाना चाहिए।

वर्जयेन्मधुमांसं च। २। १७७।

मद्य गांजा, भांग, अफीम आदि नशीले पदार्थ तथा हिंसा जनक मांस सर्वथा त्याज्य है।

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते।

शार्ङ्गधर अ० ४। श्लो० २१।

जो पदार्थ बुद्धि को नाश करने वाले मदकारी हैं वे सर्वथा त्याग देने योग्य हैं।

उपरोक्त वचनों से यही सार निकला कि मनुष्य को गन्दे स्थानों पर पैदा हुए तथा गन्दगी के खाद वाले तामसी पदार्थ न खाने चाहिए और जो बुद्धि को नाश करने वाले नशीले द्रव्य हैं वे भी सर्वथा त्याज्य हैं। इन विषयों पर आगे चलकर विचार किया जायगा कि यह क्या क्या हानि पहुँचाते हैं। ऊपर दिखाये त्याज्य द्रव्यों में से एक द्रव्य है माँस, जिसके विषय में लोगों के भिन्न भिन्न विचार हैं कोई इसे भक्ष्य और कोई अभक्ष्य कहते हैं। हमारे धर्मशास्त्रों ने धर्म के विचार से और स्वास्थ्य के विचार से इसे अभक्ष्य कहा है। जो लोग हमारे शास्त्रों पर श्रद्धा नहीं रखते, इनके लिए पृथक विचार की आवश्यकता है। यद्यपि यह उनकी भूल है, क्योंकि शास्त्र किसी व्यक्ति विशेष के नहीं हैं, उनके अनुकूल प्रतिकूल चलने से सबको समान फलाफल होगा। विचार कर देखा जाय तो हमारे जितने शास्त्रानुसार आचार विचार हैं वे सब वैद्यक के अनुसार ही हैं। आस्तिक, नास्तिक, ईसाई, मुसलमान चाहे कोई भी क्यों न हो वैद्यकशास्त्र से किसी को भी परहेज नहीं। मुसलमान भी औषध खाता है, ईसाई भी, उसके बतलाये परहेज के साथ चलता और लाभ उठाता है। फिर ऐसे धर्मशास्त्र से निषेध किये मांस का सेवन करना, क्या हानिप्रद नहीं होगा?

———

मांस पर विचार

इस विषय पर विचार कर लेना परम आवश्यक है क्योंकि इसके कारण मनुष्य का जीवन हिंसात्मक होकर स्वय पाप लिप्त होता है और दूसरों को भी हानि पहुँचाता है अर्थात्—जिन पशुओं को वह मारकर खाता है, यदि उन पशुओं से दुग्ध, घी और उनकी सन्तानों से अन्न आदि का लाभ उठाये तो एक गाय के शरीर से दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में, "चार लाख पचहत्तर हजार छः सौ" मनुष्यों को लाभ पहुँचता है। किन्तु एक गो के माँस से सौ मनुष्यों से अधिक का आहार नहीं हो सकता और आगे को सदा के लिए वंश का मूल ही कट जाता है। इस लिए प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि ऐसे पशुओं को न मारे और न मारने दे। गाय के विषय में हम इस लिए विशेष लिख रहे हैं कि वह विशेष उपकारी है। माता का दूध छोड़ने पर आमरण इसी का सतोगुण-प्रधान दूध रोगादि में भी काम आता और सर्वगुण सम्पन्न है। यदि कोई अपनी माता के समान दूध है तो गाय का ही है और सब पशुओं के दूध में कोई दोष निकल ही आता है। अपने-अपने स्थान पर सभी पशु उप-कारी हैं किन्तु भारतवर्ष के लिए इससे बढ़कर उपकारी जीव दूसरा नहीं। इसी पर भारतवर्ष में जितना अत्याचार हो रहा है उतना और किसी पर नहीं। जिसका वंश का वंश लोप किया

जा रहा, यदि यही गति रही ते कुछ वर्षों में एक भी गाय देखने के शेष न रहेंगी। हमारी समझ में गो-वंश का नाश नहीं हो रहा है प्रत्युत भारतवासियों का ही नाश हो रहा है क्योंकि भारत ही कृषी प्रधान देश है जिसमें बैलों की प्रधानतया आवश्यकता होती है। भैंस भी खेती के काम में आते हैं। किन्तु बैल के बराबर काम नहीं कर पाते, क्योंकि गरमी में उससे कोई काम नहीं होता वह गरमी बर्दास्त न कर घबड़ा जाता है और यदि गाड़ी में जुता हो तो पानी को देखकर उसमें गाड़ी को लिये दिये घुमकर बैठ जाता है। हजार चेष्टा करने पर भी वह नहीं रुकता क्योंकि वह तमोगुणी है। इस लिए धूप आदि में बैल ही उपयुक्त होता है और जानकार लोग उन्हीं से काम लेते हैं। इन उपकारी पशुओं के लाभ जो ऋषि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश में दिखाये हैं, उनके कुछ अंश का उद्धरण हम पाठकों के सन्मुख रखते हैं।

"जैसे किसी गाय से बीस सेर और किसी से दो सेर दूध प्रतिदिन होवे उसका मध्यभाग ग्यारह सेर प्रत्येक गाय से दूध होता है, कोई गाय अठारह और कोई छः महीने तक दूध देती है उसका मध्य भाग बारह महीने हुए, अब प्रत्येक गाय के जन्म भर के दूध से २४९६० (चौबीस सहस्र नौ सौ साठ) मनुष्य एक बार में तृप्त हो सकते हैं। उसके छः बछियाँ छः बछड़े होते हैं, उनमें से दो मर जायें तो भी दश रहे उनमें से पाँच बछड़ियों के जन्म-

भर के दूध को मिलाकर १२४८०० (एक लाख चौबीस सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त हो सकते हैं। अब रहे पाँच बैल, वे जन्म भर में ५०००ऽ (पाँच सहस्र मन) अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न कर सकते हैं। उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य तीन पाव खावे तो अढ़ाई लाख मनुष्यों की तृप्ति होती है। दूध और अन्न मिला ३७४८०० (तीनलाख चौहत्तर सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त होते हैं। दोनों संख्या मिला के एक गाय की एक पीढ़ी में ४७५६०० (चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ) मनुष्य एक बार पालित होते हैं और पीढ़ी परपीढ़ी बढ़ाकर लेखा करे तो असख्यात मनुष्यों का पालन होता है। इससे भिन्न (बैल) गाड़ी, सवारी, भार उठाने आदि कर्मों से मनुष्यों के बड़े उपकारक होते हैं तथा गाय दूध में अधिक उपकारक होती है और जैसे बैल उपकारक होते हैं वैसे भैंसे भी परन्तु गाय के दूध घी से जितनी बुद्धि वृद्धि से लाभ होते हैं उतने भैंस के दूध से नहीं, इसमे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है। और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा। बकरी के दूध से २५९२० (पच्चीस सहस्र नौ सौ बीस) आदमियों का पालन होता है। वैसे हाथी, घोड़े, ऊँट, भेड़ गदहे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं। इन पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों को हत्या करने वाले जानियेगा। देखो! जब आर्यों का राज था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे। तभी आर्यावर्त्त वा अन्य भूगोल देशों में

बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणि वर्त्तते थे क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्य पायी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है। क्योंकि—

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम्॥ (वृद्धचाणक्य अ० १०।१३)

जब वृक्ष का मूल ही काट दिया जाय तो फल फूल कहाँ से हों।

(प्रश्न) जो सभी अहिंसक हो जायें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जायें कि सब गाय आदि पशुओं को मार खायँ तो तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ हो जाय ?

(उत्तर) यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त कर दें।

(प्रश्न) फिर क्या उनका मांस फेंक दें।

(उत्तर) चाहे फेंक दें चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें वा जला देवें, अथवा कोई माँसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती। किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है, जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात छल कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाशक

बुद्धि, बल, पराक्रम और आयु वृद्धि होवे उन तण्डुलादि, गोधूम, फल, मूल, कन्द, दूध, घी, मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं उन २ का सर्वथा त्याग करना और जो २ जिसके लिए विहित हैं उन २ पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।"

मनुष्य का आहार मांस नहीं

मांस मनुष्य का आहार नहीं है। क्योंकि इसकी रचना मांसहारियों के साथ नहीं मिलती प्रत्युत निरामिष भोजियों के साथ मिलती है। मनुष्य को तटस्थ मान कर दो प्रकार के जीवों का विचार किया जाता है। एक मासभोजी और दूसरे निरामिषभोजी। इन दोनों में से जिसके आहार विहार के साथ इसका मिलान हो जायगा वह उसी श्रेणी का आहार भोगी समझा जायगा।

जैसे शेर, बिल्ली, गिद्ध आदि मांसहारी पशु-पक्षियों के पञ्जों के नाखून ऐसे पैने, मजबूत और घुमे हुए होते हैं कि जो शिकार बड़ी मजबूती से पकड़ कर चीर-फाड़ सकते हैं। परमात्मा ने उन्हें उनकी खुराक खाने के लिए वैसे ही औजार भी दिये हैं। जो कच्चे मांस को चीर-फाड़ सकें। यदि मनुष्य भी मांसाहारी होता तो उसे भी वैसे ही साधन दिये जाते। उसे नक्को छुरी काँटे आदि ओजारों की आवश्यकता न पड़ती। किन्तु ऐसा नहीं,

उसके नाखून बहुत ही कमजोर और सीधे होते हैं। मांस को चीरना, फाड़ना तो दूर रहा, वे थोड़ा बढ़ जाने पर जरा सी ठोकर में स्वयं ही टूट जाते हैं। अधिक क्या, इससे दोनों की बनावट का अन्तर स्पष्ट दिखायी दे रहा है। हाँ, निरामिषभोजी जीव अर्थात् गाय, भैंस, बकरी आदि के साथ अवश्य मनुष्य का मिलान होता है। उनके पंजे भी सादे होते हैं।

बिल्ली शेर आदि जितने मांसहारी जीव होंगे, वे सब रात को अन्धकार में अपनी खुराक खोजेंगे और पेट भरेंगे, दिन में कहीं छिपकर सो रहेंगे इसी लिये इनको निशाचर भी कहते हैं। इनकी नेत्र-ज्योति सूर्य का प्रकाश सहन नहीं कर सकती और दिन में सजग जीव भी इनके हाथ में कब आयेंगे। रात में थके-मांदे बेख-बर सोये जीवों पर इनकी बन आती है। मांसहारी को गरमी भी बर्दाश्त नहीं होती। वे थोड़े परिश्रम में थककर हार जाते हैं। इनके नेत्रों में इतनी शक्ति है कि उन्हें रात को भी दिन की भाँति दिखायी देता है, किन्तु जो निरामिष-भोजी हैं वे दिन में खायेंगे, और रात को आराम से सोयेंगे। वे परिश्रम से थकते नहीं और उन्हें रात को मनुष्य की भाँति दिखायी देता है। मांसहारी जीवों की आँखें रात को दीपक के सामने अँगारे की भाँति चमकती हैं और निरामिषियों की नहीं।

मनुष्य भी दिन में सब काम करता है, निरामिषियों की भाँति रात को सो जाता है इसकी आँखें भी नहीं चमकतीं। चारों वेद

और छः शास्त्रों के ज्ञाता, दशानन अर्थात् पौलस्त्य मुनि के नाती महाप्रतापी रावण को भी केवल निशाचरी मांस भोजन के कारण ही निशाचर कहा गया। इस लिए इस निशाचरी भोजन का मनुष्य मात्र को सर्वथा त्याग करना उत्तम है।

मॉसहारी जीव जब पानी पीते हैं तब जबान से उठाकर अर्थात् लपलपाकर पीते हैं। निरामिषभोजी दोनों ओठ मिला खींच कर पीते हैं। मनुष्य भी ओठों से खींचकर ही पीता है।

दाँत तीन प्रकार के होते हैं। कृन्तन, छेदन, और पेषण। इनमें से कृन्तन दाँत मॉसहारियों के होते हैं जो नोकीले गोल और टेढ़े होते हैं। जिनका काम छेद करना और चीर डालना है। ये दाँत आगे रहते हैं, इनके पीछे छेदन करने वाले होते हैं। अर्थात् जो मॉस के टुकड़े कर देते हैं। और पेषण करने वाले दाँत आमिषभोजियों के नहीं होते। क्योंकि उन्हें पीसने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे केवल टुकड़े निगल जाते हैं और उन्हें हजम हो जाते हैं। क्योंकि परमात्मा ने उनके उदर की जठराग्नि इतनी तीव्र रक्खी है कि वह कच्चे मॉस के टुकड़े भी हजम कर सकें और उन्हें अजीर्ण भी न हो। निरामिष-भोजी जीवों के भी दो प्रकार के दाँत होते हैं। एक छेदक और दूसरे पेषक। इनके कृन्तक दाँत नहीं होते क्योंकि इन्हें किसी वस्तु को दाँतों से चीरने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मांसहारियों के आगे के कृन्तक और पीछे के छेदक होते हैं। किन्तु निरामिषियों के आगे के छेदक और पीछे के पेषक

हैं। ये आगे के दाँतों से प्रत्येक वस्तु को दो टुकड़ों में विभाजित कर देते हैं अर्थात् एक मुँह में और दूसरा बाहर। आगे के दाँतों से कटे हुए टुकड़े को पिछले पेपक दाँतों से पीसकर पेट में पहुँचा देते हैं। मनुष्य के भी येही दोनों दाँत होते हैं छेदक और पेपक। भेद इतना ही होता है कि मनुष्य छेदक और पेषक से क्रमशः एक साथ काम लेता जाता है और पशु पहले केवल छेदक से टुकड़े-टुकड़े करके पेट की एक थैली में पहुँचाते जाते हैं और फिर जल पी, बैठ अथवा खड़े रहकर ही, दुबारा अन्दर से मुँह में निकाल कर पेषक दाँतों से पीसते हैं और फिर जठराग्नि में पहुँचा देते हैं।

मांसहारी जीव का जब बच्चा पैदा होता है तब उसकी आँखें बहुत दिनों तक बन्द रहती हैं। वे बच्चे अन्धे के समान पड़े रहते हैं। किन्तु निरामिषियों के बच्चे पैदा होते ही थोड़ी देर में आँख खोल देते हैं।

इस प्रकार बहुत सी भेद की बातें परमात्मा ने आमिषभोजी और निरामिषियों में रक्खी है। मनुष्य यदि इतने पर भी न समझे तो इसमें किसका दोष। यदि उल्लू को दिन में न दिखायी दे तो इसमें सूर्य का क्या दोष? सच कहा है—

नोलूकं विलोकते यदि दिवा, सूर्यस्य किं दूषणम्।

नाखून आदि औजारों का होना, रात्रि का आहार करना, रात को आँखों का चमकना, कृन्तन और छेदन दाँतों का होना। छेदन के साथ पेषण का न होना, अर्थात् पीसकर न खाना, लप-

लपा कर जबान से पानी पीना, जन्म होने पर अनेक दिन तक जन्मान्ध रहना। ठीक इसके विपरीत निरामिष भोजियों का वैसे तीखे कुण्ठित नाखूनों का न होना, दिन में आहार करना, रात्रि को आँखों का न चमकना, छेदक और पेषक दाँतों का होना तथा कृन्तन का न होना, ओठ से खींचकर पानी पीना, लपलपा कर नहीं। जन्मते ही आँखों का खुलना, बन्द न रहना। इन दोनों पशुओं में कितना भारी अन्तर है।

इस तुलना से देखें कि वह निरामिषभोजियों की समता रखता है या आमिषभोजियों की। इस प्रकार मिलान करने से स्पष्ट मालूम हो जायगा कि मनुष्य निरामिषियों का ही सहयोगी है आमिषियों का नहीं। इस लिये उसे माँस अवश्य त्याग देना चाहिये।

शास्त्र विधि से भी निषेध पाया गया और ईश्वरीय रचना से भी यही सिद्ध हो रहा है कि मनुष्य की खुराक माँस नहीं। योरप आदि देशों के अनुभवी डाक्टर भी इसका निषेध कर रहे हैं और स्पष्ट आदेश कर रहे हैं कि यह बहुत हानि पहुँचाने वाला है। अब हम एक दूसरी विधि से भी प्रकाश डालना चाहते हैं जो हमारे इस प्रकृत विषय से सम्बन्ध रखता है।

स्वास्थ्य और मांस

मॉस स्वास्थ्य के लिए कैसा है ? विचार करने से यह मालूम होता है कि मॉस खाने से जितनी बड़ी और जल्दी बीमारी पैदा होती है उतनी और किसी से नहीं। जिस प्रकार से मनुष्य को सक्रामक रोग होते हैं उसी प्रकार पशु-पक्षियों को भी होते हैं। मानिये किसी तपेदिक के रोगी ने कफ थूका या दमे के रोगी ने थूका, उस कफ को मुर्गा मुर्गी ने खाया जो प्राय. गली कूचों और कतवारखानों में घूम घूम कर खाया करते हैं। और उसका विषैला असर उस जानवर के मॉस में प्रविष्ट हुआ। उस जीव को जो कोई भी खायगा उसे बीमारी क्यों न होगी। लोग यह कहते हैं कि मुर्गी को वह रोग क्यों नहीं हुआ ? सम्भव है मुर्गी उस रोग से पीड़ित हो या न हो। किन्तु उसका असर उसके मॉस में तो अवश्य रह सकता है। इसका प्रतिवाद कोई नहीं कर सकता। जिसका अकाट्य प्रमाण आगे दिया जाता है। जिस चील्ह ने मरा हुआ सर्प खाया हो, उसकी बीठ कुत्ता खा लेने से पागल हो जाता है और वह कुत्ता जिस जिस को काटता है, यदि उसकी यथोचित औषध न की जाय तो वह अवश्य मर जाता है।

इस उदाहरण में देखा जाता है कि खाये हुए सर्प के विष से चील्ह और गीध नहीं मरते और न पगलाते ही हैं। किन्तु उसकी बीठ खाने वाले कुत्ते, स्यार आदि जीव पगलाते और मरते भी हैं। क्या बीठ मात्र में उसके विष का असर खतम हो जाता है।

उत्तर स्पष्ट है नहीं। क्योंकि देखा जाता है कि चील्ह का माँस कोई जीव नहीं खाता और न गलाने से गलता ही है। इसका क्या कारण? इसका कारण है सर्प के विष का असर। अक्सर देखा जाता है कि जिस मनुष्य को सर्प काट लेता है उसे भी कोई जीव या जल-जन्तु नहीं खाते। इससे स्पष्ट हो गया कि सर्प का विष ही इसका कारण है, जो मनुष्य और सर्पाहारी जीवों के शरीर में व्याप्त होता है।

अण्डा

इसी प्रकार खाये हुए पदार्थों के रस, रक्त, माँस, मज्जा आदि धातुएँ बनती हैं जिनमें अन्त्यम धातु वीर्य होती है। उसमें भी आहार के अनुसार ही गुण दोष होते हैं। जिनका असर सन्तान तक के शरीर में जा पहुँचता है। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि अण्डे में रहने वाले मिश्रित पदार्थ में भी उनके माता पिता के रज-वीर्यान्तरगत रोगादि दोष अवश्य रहते हैं, जो अण्डे खाने वाले के शरीर में भी प्रवेश कर जाते हैं। इस लिए भी माँस और अण्डे नहीं खाने चाहिएँ।

मनुष्य स्वभाव विरुद्ध माँस

परीक्षा करने पर मालूम होता है कि माँस खाना मनुष्य का स्वभाव नहीं। जैसे एक स्थान पर कुछ फल और माँस के टुकड़े रख दीजिये। पहले गाय के बच्चे को उन चीजों के पास छोड़

दीजिए और फिर देखिये कि वह क्या खाता है। वह माँस को सूँघकर छोड़ देगा और फलों को खा जायगा। और यदि बिल्ली के बच्चे को छोड़ा जाय तो वह फल को छोड़कर माँस खा जायगा इन्हीं दोनों चीजों को मनुष्य के बच्चे के सन्मुख रख दो। वह भी फल ही खायेगा।

मनुष्य की खुराक में ऐसा कोई खाद्य-पदार्थ नहीं, जो साबित बिना दाढ़ों के पीसे ही निगल लिया जाय। किन्तु मांसाहारी चबाते नहीं साबित ही निगल जाते हैं। चाहे वे मनुष्य के संसर्ग से अन्न ही क्यों न खाने लग गये हों पर वे पीस नहीं सकते, क्योंकि उनके पास पीसने के दाँत ही नहीं। प्रश्न होता है कि उनको पीसने के दाँत परमात्मा ने क्यों नहीं दिये ? उनकी खुराक से साफ उत्तर मिल जाता है। अर्थात् माँस कैसी चीमड़ (न पिसने वाली) वस्तु है जो पीसे से पिस नहीं सकती, वही उसको खाना है। उसके लिए पेषक दाँतों की कोई आवश्यकता नहीं। इसमें भी परमात्मा की सार्थकता ही झलकती है कि वह कोई काम निरर्थक नहीं करता।

आत्मघाती मनुष्य

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

[यजु०। अ० ४। म० ३]

अर्थ—वे मनुष्य महा अन्धकार वाले लोकों में मरने के पश्चात् जाते हैं। आत्मा का हनन करते हैं।

जो आदमी अपनी आत्मा के विरुद्ध करता है वह आत्म-घाती कहलाता है। परमात्मा ने हमें ज्ञान इन्द्रियें इस लिए दी हैं कि हम उनसे भले बुरे की तमीज करें। वे इन्द्रियें शरीर की ऐसी पहरेदारी करती हैं कि जो वस्तु शरीर के प्रतिकूल होती है उससे मुँह घुमा देती हैं और जो लाभदायक होगी उसकी ओर आकृष्ट हो जायँगी। जैसे बच्चे का स्वभाव खेलने का है। वह उसके लिए हितकर भी है। हाँ वह अज्ञानवश कभी-कभी गिर-पड़कर चोट फेंट खा जाता है उस समय उसे शुद्ध रीति से खेलना सिखाना चाहिए जिससे उसे हानि न हो। क्योंकि खेल उसके लिए स्वास्थ्यप्रद है और वह उसके आत्मा की उपज है। प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि मेरी सन्तान निरोग और सुखी हो। किन्तु नशैली वस्तुओं का व्यवहार कर अपने शरीर को रोगी बना सन्तान पैदा करते हैं, जो रोगी और दुःख भोगती हैं। आप यह न समझें कि सन्तान आपसे कोई दूसरी चीज है वरन आप में और उसमें कुछ भी अन्तर नहीं। वह आपकी प्रतिकृति (तस्वीर) मात्र है क्योंकि लिखा है—

"आत्मा वै जायते पुत्रः"

अर्थात् पुत्र ही अपना दूसरा स्वरूप है। फिर उसके प्रति इतना अन्याय करना, क्या कम आत्मघात है। जो वस्तु आपको

आत्मा स्वीकार नहीं करती उसका जबरदस्ती व्यवहार करना क्या आत्मघात नहीं है, अर्थात् किसी से पूछिये क्या तुम्हें हृदय से तमाखू, गाँजा, चरस पीना सूँघना खाना अच्छा लगता है ? वे स्पष्ट कह देंगे नहीं, जब उनसे पूछा जाता है फिर क्यों इनका व्यवहार करत हो छोड़ दो। तो वे जवाब देते हैं कि क्या करें, कुसंगत में पड़के यह रोग पीछे लग गया। छोड़ना तो बहुत चाहते हैं पर छूटता नहीं।

इससे यह सिद्ध हुआ कि बुरा तो वे उसे अवश्य समझते हैं, किन्तु छोड़ने की चेष्टा नहीं करते। यदि वे चेष्टा करें तो छोड़ भी सकते हैं, पर सामर्थ्य रखकर भी उन्होंने अपने-आपको नशे का गुलाम समझ लिया है। न चाहते हुए, अपने-आपको किसी का गुलाम बनाये रखना, बड़ी भारी आत्मघातकता है। अस्तु, और देखिये इन्द्रियरूपी डाक्टरों को कैसा धोखा देकर आत्मघात किया जाता है। जब मनुष्य कोई खाद्य वस्तु खरीदने लगता है तब सबसे पहले उसकी परीक्षा आँख से करता है कि गली-सड़ी तो नहीं है। यदि निर्दोष पाता है तो उसे उठाकर नाक से सूँघकर देखता है कि किसी प्रकार की बदबू तो नहीं। यदि सूँघने में अच्छा होगा तो फिर मुँह में जायगा अन्यथा नहीं। तब जबान उसके रस की परीक्षा करेगी। यदि अच्छा निकला तो ठीक नहीं तो थूक कर फेंक दिया जायगा। आँख नाक और जबान तीनों से परीक्षा हो जाने पर जो वस्तु आदि अन्त तक ठीक उतरती है वह स्वास्थ्य

के लिए सर्वदा ठीक होती है। किन्तु आजकल मनुष्यों की विचित्र गति है, वे इसकी परवाह न कर जबरदस्ती इन्द्रियों को धोखा देने की चेष्टा करते हैं, जैसे मनुष्य मच्छलियाँ खरीदने के लिए मछली वालों के पास जाता है। आँखें उसकी ओर देखना नहीं चाहतीं और नाक को बदबू नहीं सुहाती। इस लिए वह मनुष्य मुँह और नाक रुमाल से दबाकर, एक सड़ा-गन्दा गमच्छा मछली वाले की ओर फेंककर कहता है—जल्दी बाँधकर दे दो, मारे बू के खड़ा नहीं हुआ जाता। बँधे हुए गमछे का एक सिरा पकड़ कर अपने शरीर से दूर हटाये हुए घर को चल देता है। मार्ग में यदि कोई उससे पूछे कि यह दूर क्यों हटाये हुए हो क्या कोई बुरी वस्तु है? तो उसका उत्तर न दे मौन रह जाता है। यथार्थ में बात भी ऐसी ही है, क्योंकि उसका हृदय भी उसको बुरा समझता है। अब घर लाकर पहले उसकी सूरत बदलने की चेष्टा की जाती है अर्थात् इन्द्रियों को रिशवत देने की चेष्टा की जाती है। पहले आँख को रिशवत स्वरूप हल्दी का रंग प्रदान करता है और फिर नाक तथा जबान के लिए खुशबूदार मसाले, घी या तेल के साथ भेंट किये जाते हैं। इतना करने पर भी जब खा चुकता है तब फिर जबान का जायका बिगड़ जाता है तब उसे पुनः रिशवत स्वरूप सुपारी (छाली) अर्पण करता है। आप मछली खाने वाले के चरित्र को देखें, वह कितना आत्मघाती है। उसके पसीने से इतनी बुरी बू आती है कि उसके कपड़े दूर से ही महकते हैं।

एक बात और विचार करने की है। जब किसी के माता या पिता मरते हैं तो उनको दाह करने के बाद मुर्दा ढोने वाले जब तक नहा नहीं लेते तब तक वे अपने को इतना अपवित्र मानते हैं कि खा पी नहीं सकते और जिसके माता या पिता थे उसको तेरह दिन तक अछूत मानते हैं और उसे कोई नहीं छूता। यदि कोई भूल से उसे तेरह दिन के अन्दर छू जाय तो उसे भी नहाना पड़ता है। इससे मालूम हुआ कि मुर्दा ले जाने वाले जब नहा लें तब पवित्र हो जाते हैं तथा पुत्र तेरह दिन में शुद्ध होता है क्योंकि उसने दाग दिया था। अस्तु हम पूछते हैं कि जो मुर्दे को पेट में रख लेते हैं वे कितने दिन में पवित्र होंगे। जब कि रस, रक्त, माँस आदि सप्त धातु तक उस खाये हुए मांस के बन जाते हैं। जिसने मछली का मांस खाया उसने किसका मांस नहीं खाया जब कि मछली सब का मांस खाती है। इस अपवित्रता की शुद्धि हमारी समझ में जब से मांस खाना छोड़ देगा तब से लेकर बारह वर्ष के बाद होगी। जब सब शरीर की धातुएँ बदल जायँगी। मछली सब रोगों का घर है क्योंकि जल की गन्दगी साफ करने के लिये उसे जल की सभी वस्तुएँ खानी पड़ती हैं।

तमाखू

तमाखू का व्यवहार भारतवर्ष ही क्या समस्त देश का बच्चा बच्चा कर रहा है। भारत वासियों ने भिन्न भिन्न तरीके से इस्तेमाल करने के कारण तथा उसके नाम भी अलग अलग रख दिये और वे नाम हैं भी विचित्र उलटे पुलटे। जैसे थुकनी को खैनी। चूना लगा मलकर जब कोई मुँह में थुकनी रख लेता है, तब से थूक थूक कर सारा मकान गन्दा कर देता है। उसे क्षणभर आराम से बैठना कठिन हो जाता है। यदि कोई उस समय कुछ पूछ बैठे जिसका जवाब देना उसे आवश्यक हो, तो देखिये उसके मुँह से कितना थूक गिरता है और मुँह से एक अक्षर भी साफ नहीं निकलता। तथा इतनी बदबू मुँह से आती है कि कोई उसे सहन नहीं कर सकता। तमाखू अधर ओष्ठ में दबी रहती है, यदि उस को या उसकी पीक को पेट में उतार दे तो तुरन्त मालूम हो जाय कि वह कितनी भयंकर चीज है। उसी समय वमन पर वमन होने लगे और शिर चक्कर खाने लगे। जब वह खैनी है तो उसकी क्यों विपरीत गति दिखायी दे रही है। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि वह खैनी नहीं किन्तु थुकनी है। क्योंकि वह मनुष्य शरीर के स्वभाव से विरुद्ध होने के कारण अन्दर नहीं रह सकती। इस लिये प्रकृति उसे बाहर फेंक रही है। जो प्रकृति विरुद्ध वस्तु है उसका व्यवहार करना कहाँ की बुद्धिमत्ता है। तमाखू खाने वालों

के अगले दाँत बहुत जल्दी टूट जाते हैं, उन्हें तमाखू मिला चूना खा जाता है। दूसरा धातु पतली पड़कर स्वप्नदोष, धातुक्षीणता, आदि बीमारियाँ भी हो जाती हैं। नेत्र की ज्योति भी मन्द हो जाती हैं। दाँत हमेशा गन्दे बने रहते हैं।

लोगों का कहना है कि इसके खाये बिना पाखाना नहीं होता, यह उनकी भूल है। क्योंकि नशे की गरमी और खुश्की से ही पाखाना आँतों में सूखकर चिपट जाता है और आँतों में त्यागने की शक्ति नहीं रहती। यदि तमाखू आदि को छोड़ दें और प्रातः सो कर उठते ही आध सेर पानी पीकर टहल लें तो उन्हें पाखाना अवश्य आने लगेगा तथा सायंकाल को भी पाखाने के कुछ समय पूर्व जल पीकर टहलना चाहिए। इस प्रयोग से सदा के लिये यह रोग उनका पिण्ड छोड़ देगा।

नकछिकनी

दूसरा है नकछिकनी जिसे लोग सुँघनी कहते हैं। वह पिसी हुई तमाखू होती है। वह इतनी बारीक होती है कि नाक के पास आते ही स्वाँस के साथ दिमाग में चढ़ जाती है, जिससे छींक पर छींक आने लगती है और आँख नाक से पानी निकलने लगता है। कई मनुष्यों को इसका इतना अभ्यास बढ़ जाता है कि वे प्रतिक्षण नासदानी हाथ में लिए रहते हैं और उनकी नाक के नथुने बराबर भरे रहते हैं। यह वह हालत हुई कि "गये थे नमाज पढ़ने रोजे गले लग गये" लगे थे सर्दी दूर करने और दूसरा रोग

पीछे लग गया। नॉस लेने वाले के हाथ हमेशा गन्दे रहते हैं और सुर्र-सुर्र हमेशा नाक बहा करती है। नास वाले को शिर के सभी रोग हो जाते हैं। नेत्रों से जल गिरता रहता है। स्मरणशक्ति घट जाती है। इसको सुँघनी न कहकर नकछिकनी ही कहना उचित है क्योंकि "यथा नाम तथा गुणः" जैसा नाम वैसे ही गुण भी हैं। इस वस्तु को भी विचारवान पुरुषों को छोड़ देना चाहिये क्योंकि शिर की कोई भी इन्द्रिय इसे स्वीकार नहीं करतीं बल्कि रो रोकर आँसू बहाती हैं और इस बात का संकेत करती हैं कि अय मनुष्य! इस बला को जबर्दस्ती न ठूँस, नहीं तो आखिर को तुझे इससे हाथ धोना पड़ेगा।

हुक्का

एक इसका तरीका यह भी है कि चिलम में तमाखू जमा कर हुक्के पर रखकर पी जाती है और एक मट्टी या किसी धातु का बना हुआ छोटे मुँह का पात्र होता है जिसके मुँह में नेचा बँधी दो नालियाँ होती हैं। उनमें एक लगभग धनुषाकार और दूसरी सीधी। इन दोनों नलियों के नीचे का भाग बँधा हुआ होता है। उसको नेचा कहते हैं। इसको प्रायः मुसलमान लोग बाँधते हैं। वे लोग कबारखाने पर से गन्दे चिथड़े तथा शफाखाने में से जो मरीजों की पट्टियें मवाद आदि से भरी होतीं हैं मामूली तौर से धो पोंछकर नेचा बाँधने के काम में लाते हैं। पहले इन रद्दी कपड़ों

से बन्धन बांधकर फिर उसके ऊपर रंगीन अच्छे कपड़े लपेट कर उस पर तार का काम कर देते हैं जिससे वह ऊपर से देखने में अच्छा लगे। वह नेचा जब भिगोकर पात्र के मुँह पर जमाया जाता है तो गीला होने पर भीतर का सब तत्व बाहर आ जाता है। जब हुक्का पिया जाता है तब सीधी नली में से धुआं होकर पात्र में जाता है जिसमें जल भरा होता है फिर धनुषाकार नाली से मुँह में आ जाता है। पात्र में पानी इस लिए भरा जाता है कि तमाखू का विष पानी में रह जाय। होता भी ऐसा ही है अर्थात् धुयें का पानी से स्पर्श होने से कुछ विष पानी में रह जाता है जिससे पानी का रंग पीला पड़ जाता है और इस कदर बदबू हो जाती है कि जो सहन नहीं होती। अब उसके विष का प्रभाव देखिये। आप एक विषधर सर्प को लीजिये और उस पर इस हुक्के के पानी को डालकर देखिये। वह आपके सामने चन्द मिनटों में ही तड़फ २ कर मर जायगा। इससे मालूम हुआ कि तमाखू का विष सर्प से भी तीक्ष्ण है। जो उसे वह सहन नहीं कर सका फिर मनुष्य की क्या गति होगी यह इसीसे मालूम हो सकता है। वह नली जिससे धुआँ खींचा जाता है उसमें कीट जम जाती है उससे भी कम दुर्गन्ध नहीं आती, उसमें सभी मुँह लगाते हैं जिसमें जूठे मीठे का कुछ विचार नहीं रहता। कभी-कभी नली को मुँह में लिए हुए खाँस देते हैं जिससे कफ की फुटकी नली में चली जाती है। जो दूसरे के या अपने ही खींचते वक्त मुँह में आ जाती

हैं। ऐसा प्रायः हो जाया करता है।

पीने की तमाखू जिस शीरे से बनायी जाती है वह इतना गन्दा होता है कि जिसमें अनेक प्रकार के कीट पतंग आदि की तो गिनती ही नहीं कितने मर जाते हों। प्रत्युत चूहे छिपकली चमचिड़े आदि भी गिरकर गल-सड़ जाते हैं। इस गले सड़े शीरे से यह वस्तु बनी देख, उस गन्दगी को स्मरण कर कलेजा मुँह को आता है जिसका इसे पीने वाले कुछ भी विचार नहीं करते।

बीड़ी

बीड़ी, और भी खतरनाक है। क्योंकि इसके धुएँ का सीधा स्पर्श फेफड़ों से होता है। फेफड़ों में रहने वाला जल उसके विष को अपने में लेता जाता है। उस विष के प्रभाव से धोंकनियाँ मूर्छित सी हो जाती हैं और उनका मन्द स्पन्दन होने लगता है। जिससे सब शरीर में नशा सा प्रतीत होता है। वह नशाखोरों को भले ही अच्छा मालूम होता हो, परन्तु फेफड़ों पर कफ अपना प्रभाव जमाकर सूखता है तथा धमनियों के कमजोर पड़ने से पहले अधिक खाँस-खाँस कर कफ निकलने लगता है और फिर सूखी खाँसी तथा दमा आदि रोग पैदा हो जाते हैं। गाँजा, चरस आदि बलगम को सुखाते और शरीर की सभी धातुओं को उत्तेजित कर प्रथम बढ़ा देते हैं अथवा सुखा देते हैं। तमाखू को जो काम करने में कुछ वर्ष लगेंगे ये उसे दिनों में कर डालते हैं, अर्थात् धातु-

क्षीणता, स्वप्नदोष, बुद्धि-मान्द्य, दमा, खाँसी, कमजोरी आदि-आदि अनेक दुर्दमनीय रोग पैदा कर डालते हैं।

सिगरेट

यह तमाखू बीड़ी से भी बढ़कर विषधर है, क्योंकि इसमें दूने नशे का प्रयोग किया जाता है। एक तमाखू दूसरा अफीम, तमाखू के पत्तों पर अफीम का पानी छिड़का जाता है यदि नशा अधिक तेज करना हो तो अफीम के पानी में पत्ते भिगो दिये जाते हैं जो नशा बहुत लाते हैं। "नीम चढ़े करेले" की तरह इनका असर होता है। इसको पीने वाला यदि इसे छोड़ना चाहे तो कठिनाई से छोड़ पाता है। बीड़ा, तमाखू, सिगरेट, भाँग, चाय, काफी, कोको आदि नशीली चीजों पर अब हम विशेष और कुछ अधिक न लिख कर सर्वदेश प्रसिद्ध महात्मा गाँधी के लिखे अनुभविक भोजन विषयक लेख का कुछ अंश यहाँ नीचे उद्धृत कर देते हैं।

"हमें कौन सी चीज खानी चाहिए, इसके पहले यह देख लेना आवश्यक है कि हमें कौन सी चीज न खानी चाहिए। मुख की राह से शरीर के अन्दर जाने वाली चीजों की गिनती यदि हम अनाज शब्द में करें तो शराब, बीड़ी, तम्बाकू, भांग चाय, काफी, कोको और मसाला इत्यादि भी अनाज ही है।

मुझे अनुभव से मालूम हुआ है कि यह सब चीजें छोड़ने के लायक हैं, इनमें से कुछ चीजों का अनुभव तो खुद ही किया है, और कुछ के सम्बन्ध में दूसरों के अनुभव से लाभ उठाया है।

शराब और भांग को हर धर्म में दूषित ठहराया गया है। फिर भी शायद ही कोई इनके पीने से परहेज़ करता हो। शराब से हज़ारों घर धूल में मिल गये। लाखों आदमियों का सत्यानाश हो चुका। शराबी को किसी बात का ज्ञान नहीं रहता। प्रायः वह माता, स्त्री और लड़की का भेद तक भूल जाता है। शराब से मनुष्य का भेजा जल जाता है अन्त में वह पृथ्वी का भार हो जाता है। शराबी मोरियों में पड़े नजर आते हैं। अच्छा मनुष्य भी शराब से कौड़ी का तीन हो जाता है। इस व्यसन से घिरे मनुष्य, होश-हवास ठीक होते भी निकम्मे देख पड़ते हैं। मन पर उनका अधिकार नहीं होता, सदा शेखचिल्लियों के से मनसूबे बांधा करते हैं। इस लिए शराब और इसी की सगी बहन भांग दोनों चीजें बिलकुल त्यागने योग्य हैं; इसमें दो मत नहीं हो सकते। कुछ लोग कहते हैं, दवा की भांति शराब पीने में कोई हर्ज नहीं। परन्तु असल में इतनी की भी जरूरत नहीं। यूरोप—जो शराब का घर है—वहां के डाक्टरों की भी यही राय है। पहले अनेक बीमारियों में शराब काम में आती थी, परन्तु वहां अब बिलकुल बन्द हो गई है। असल में तो दवा की दलील ही निराधार है। शराब के पक्षपाती दिखाना चाहते हैं कि जब शराब दवा के काम में आ सकती है, तब उसे पीने के काम में लाना क्या बुरा है। परन्तु फिर भी तो दवा की भांति काम आता है तो भी कोई उसे खुराक की भांति बरतने का विचार तक नहीं करता।

हो सकता है, कुछ बीमारियों में शराब से लाभ पहुँचे, पर हानि इतनी हो चुकी है कि विचारवान मनुष्य को चाहिए कि जान जाने दे, पर शराब दवा में भी न ले। शराब से इस शरीर की भलाई होने में जहाँ सैकड़ों मनुष्यों का बुरा होता है वहाँ ऐसे शरीर की रक्षा न कर उसे नष्ट ही हो जाने देना चाहिए। हिन्दुस्तान में लाखों मनुष्य ऐसे हैं जो वैद्य के कहने पर भी शराब न पीयेंगे। वे शराब पीकर या अपनी समझ में बुरी चीजों का प्रयोग कर जीना नहीं पसन्द करते। अफीम का विचार भी शराब के साथ ही करना चाहिए। अफीम का नशा शराब से भिन्न है, फिर भी उससे शराब से कम बुराई नहीं होती। अफीम के फेर में पड़कर चीन जैसे बड़े राष्ट्र की प्रजा पायी हुई स्वतन्त्रता खो बैठी। हमारे जागीरदार भी अफीम के चंगुल में पड़कर अपनी-अपनी जागीरों से हाथ धो बैठे।

शराब, भाँग और अफीम की बुराइयाँ तो साधारण पाठकों की समझ में तुरन्त आ जाती हैं, और बीड़ी तम्बाकू की नहीं आती। बीड़ी और तम्बाकू ने मनुष्य जाति पर अपना ऐसा असर जमा रखा है कि उसके मिटने में एक जमाना लगेगा। छोटे बड़े सभी इसके फेर में पड़े हैं। अच्छे भलेमानुष भी बीड़ी सिगरेट का व्यवहार करते हैं। इनके पीने में कोई शरम नहीं समझी जाती। मित्रों की खातिर का यह एक महान् साधन बन गई है। दिन-दिन इनका प्रचार बढ़ता जाता है। सर्वसाधारण को इस

बात की खबर नहीं कि सिगरेट का व्यसन बढ़ाने के लिए सिगरेट के व्यापारी लोग उसकी बनावट में हजारों तरकीबें लड़ाते हैं। जहें तम्बाकू में अनेक प्रकार के सुगन्धित तेजाब छिड़कते हैं और अफीम का पानी मिलाते हैं। इससे सिगरेट हम पर अधिकाधिक अधिकार जमाती जाती है। उसके लिए नोटिसबाजी में हजारों पौंड खर्च किये जाते हैं। यूरोप में सिगरेट कम्पनियाँ अपने छापेखाने चलातीं, बायस्कोप खरीदतीं, अनेक प्रकार का इनाम बाँटतीं, लाटरियाँ निकालतीं और नोटिसबाजी में पानी की तरह पैसा बहाती हैं। फल यह हुआ कि स्त्रियों तक को सिगरेट की आदत लग गई है। सिगरेट पीने पर कवितायें भी बनायी गई हैं, इनमें सिगरेट को "गरीब नेवाज" (दीनबन्धु) की उपमा दी गयी है।

सिगरेट तम्बाकू से होने वाली हानियों की गिनती नहीं हो सकती। सिगरेट पीनेवाले मनुष्य का व्यसन इतना अधिक बढ़ जाता है कि वह बिना किसी की परवा किये दूसरे के घर में बिना इजाजत ही सिगरेट का धुआँ उड़ाने लगता है, किसी की शरम नहीं रखता।

देखा गया है कि सिगरेट और तम्बाकू पीने वाला मनुष्य इन चीजों की प्राप्ति के लिए बहुतेरे अपराध तक कर बैठता है। लड़के माता पिता के पैसे चुराते हैं, जेल में कैदी बहुत जोखिम उठाकर सिगरेट रखते हैं। दूसरे आहार बिना काम चल जाता है, सिगरेट बिना नहीं। लड़ाई में सिगरेट पीने वाले सिपाहियों

को सिगरेट नहीं मिलती तो ढीले पड़ जाते हैं, फिर किसी काम के नहीं रहते।

सिगरेट पर स्वर्गीय टालस्टाय ने लिखा है कि एक मनुष्य के मन में अपनी स्त्री के खून करने का विचार आया। छुरा निकाला और चलाने को तैयार हुआ, पछताया और पीछे हट गया। फिर सिगरेट पीने बैठा, सिगरेट के जहर से अक्ल पर पर्दा पड़ गया; तब उसने खून किया। म० टालस्टाय तम्बाकू को एक सूक्ष्म प्रकार का और कई अंशों में शराब से भी खराब नशा मानते थे।

सिगरेट का खर्च भी कुछ कम नहीं। कुछ मनुष्यों को चुरुट के पीछे हर महीने ५ पौण्ड अर्थात् ७५ रुपये तक खर्च करते मैंने अपनी आँखों देखा है।

सिगरेट से पाचनशक्ति कम हो जाती है। भोजन का स्वाद नहीं मिलता। अन्न फीका मालूम होता है। इस लिए उसमें मसाला इत्यादि डालना पड़ता है। सिगरेट पीने वाले की साँस से बदबू निकलने लगती है। उसका धुआं हवा को बिगाड़ता है। कितनी ही बार मुँह में फफोले पड़ जाते हैं। मसूड़े और दांत काले या पीले पड़ जाते हैं। कितने ही लोगों को इससे भी भयंकर बीमारियाँ हो जाती हैं। समझ में नहीं आता कि शराब के निन्दक सिगरेट क्यों पीते हैं? सिगरेट का जहर सूक्ष्म है शायद इसी से उसका प्रयोग करते हैं। जो निरोग रहना चाहते हैं उन्हें सिगरेट पीना जरूर छोड़ देना चाहिये।

शराब, तम्बाकू, बीड़ी और भाँग इत्यादि व्यसन हमारे शरीर का आरोग्य हर लेते हैं। मन और धन के आरोग्य का भी हरण करते हैं। इनसे हमारे आचरण का नाश होता है और हम व्यसनों के गुलाम बन जाते हैं।

लोगों के मन में यह बैठना बहुत कठिन जान पड़ता है कि चाय, काफी और कोको बुरी चीजें हैं। पर चाहे जो हो, कहना ही पड़ता है कि ये सब चीजें बुरी हैं। इनमें एक विशेष प्रकार का नशा होता है। यदि चाय और काफी के साथ दूध शक्कर न हो तो इनमें एक भी पुष्टिकारक पदार्थ नहीं। केवल चाय और काफी पर जीवन निर्वाह करके कितने ही प्रयोग किये गये। सिद्ध यही हुआ कि इनमें खून बढ़ाने वाली चीजें बिलकुल नहीं हैं। हम लोग कुछ वर्ष पहले साधारण तौर पर चाय और काफी नहीं पीते थे, कहीं किसी विशेष अवसर पर या दवा में इन्हें पी लेते थे। परन्तु अब नई रोशनी के कारण चाय और काफी साधारण वस्तु बन गई हैं। अब तो हम केवल मिलने आने वाले मेहमानों तक को ये चीजें पिलाते हैं। चाय की पार्टियाँ देते हैं। लार्ड कर्जन के शासनकाल से तो चाय ने और भी हाथ पैर फैला दिये हैं। इन साहब बहादुर ने चाय के व्यापारियों को उत्तेजना दे दे कर चाय का प्रचार घर घर करा दिया और लोग जहाँ पहले आरोग्यकारक चीजें पीते थे वहाँ अब रोगकारी चाय पीने लग गये हैं।

कोको बहुत नहीं फैला, क्योंकि वह चाय से कुछ महंगा है। सौभाग्य से हम लोगों को इसका परिचय बहुत कम है। फिर भी फैसनेबुल घरों में उसकी पूर्ण सत्ता है।

चाय, काफी और कोको ये तीनो चीजें पाचनशक्ति को कम करने वाली हैं। ये नशे की चीजें हैं। क्योंकि जिन्हें इनका व्यसन पड़ जाता है वे छोड़ नहीं सकते। लेखक खुद भी चाय पीता था। यदि चाय के समय इसे चाय न मिलती थी तो आलस्य मालूम होता था। यह नशे की पक्की निशानी है। एक उत्सव में लगभग ४०० स्त्रियाँ और बच्चे इकट्ठे हुए थे। प्रबन्धकों ने तय कर लिया था कि इनको चाय या काफी न देनी चाहिए। जो स्त्रियाँ आई थीं उन्हें ४ बजे चाय पीने की अचूक आदत थी। प्रबन्धकों को खबर मिली कि औरतों को चाय न मिलेगी तो वे बीमार पड़ जायँगी। चल फिर न सकेंगी। लाचार उन्हे अपना प्रबन्ध बद-लना पड़ा। चाय बन ही रही थी कि शोर मच गया, चाय जल्दी चाहिये। औरतों का माथा चढ़ा हुआ था। उन्हें पल पल महीने के समान मालूम होता था। चाय मिलने पर इन महिलाओं के चेहरे खिले और उन्होने होश संभाला। यह एक सच्ची घटना है। एक स्त्री को चाय से इतना नुकसान पहुँचा था कि उसे खाना हजम न होता था। सिर सदा दुखता रहता, पर जब से उसने अपने मन को वश में करके चाय पीना छोड़ा, तब से उसकी तबा-यत बहुत सुधर गई। इङ्गलैण्ड की बेटरसी म्युनिसिपैलिटी के

एक डाक्टर ने अनुसन्धान करके बतलाया है कि इस इलाके की हजारों स्त्रियों के ज्ञान तन्तुओं में दर्द होने का कारण उनका व्यसन है। चाय से मनुष्यों के आरोग्य बिगड़ने के बहुतेरे प्रमाण मुझे मिल चुके हैं। मेरा पक्का मत है कि चाय से आरोग्य को कितनी हानि पहुँचती है। काफी के सम्बन्ध में एक दोहा प्रच-लित है:—

"कफ घटे, बादी हरे, करे धातु बल छीन।
रक्तहि पानी सम करे, दो गुन अवगुन तीन।"

यह दोहा बिलकुल ठीक मालूम होता है। निस्सन्देह काफी में कफ और बादी हरने की शक्ति है। पर अन्य चीजों में भी यह शक्ति मौजूद है। इन कारणों से काफी पीने वाले अदरक का रस पियें तो काफी की आवश्यकता पूरी हो जायगी। याद रहे कि धातु जैसी अमूल्य वस्तु को जिस चीज से हानि पहुँचे, जिससे बल का क्षय हो, जो रक्त को पानी कर दे, उसे त्यागने में ही कल्याण है।

जो लोग आरोग्य में नीति का समावेश करते हैं उनके सामने इन तीनों वस्तुओं के सम्बन्ध में नीचे लिखी दलीलें पेश की जा सकती हैं। चाय, काफी, और कोको अधिकतर उन मजदूरों के द्वारा उत्पन्न की जाती है जो शर्त्तबंधे कुली बन कर चाय के बगीचों में जाते हैं। जहां कोको की उपज होती है वहाँ मज़-दूरों पर होते हुए जुल्मों को यदि अपनी आँखों से देख लें तो

उसके ग्रहण की जरा भी इच्छा न करें। कोको के खेतों में होने वाले जुल्मों पर बड़ी बड़ी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। यदि हम सब अपनी खुराक की उत्पत्ति के विषय में पूरा ज्ञान प्राप्त करें तो १०० में से ९० वस्तुओं का त्याग अवश्य कर दें।

इन तीनों वस्तुओं के बदले नीचे लिखे ढङ्ग से निर्दोष और पुष्टिकर चाय बन सकती है। इसे चाय के नाम पर मजे में पी सकते हैं। काफी और इस निर्दोष चाय के स्वाद में इतना कम अन्तर है कि उसे काफी पीनेवाले भी नहीं समझ सकते। पहले गेहूँ को साफ तवे या कड़ाही में डाल चूल्हे पर भूनना चाहिए। खूब लाल होकर कलछाने लगने पर उतार लिये जायँ और काफी दलने की छोटी चक्की में साधारण तौर पर बारीक दल लिये जायँ। इसमें से एक चम्मच भर कर प्याले में डालकर उस पर उबलता हुआ पानी डाल दें। यदि इसे एक मिनट तक चूल्हे पर चढ़ा कर रहने दें तो और भी अच्छा हो। आवश्यकता जान पड़े तो दूध और शक्कर भी इसमें मिला ली जाय। दूध और शक्कर के बिना भी इसे पी सकते हैं। पाठक इसका प्रयोग कर देख सकते हैं। इसे ग्रहण कर जो लोग चाय काफी और कोको छोड़ देंगे उनके पैसे बचेंगे और स्वास्थ्य रक्षा भी होगी।"

जिन पाश्चात्य देशों में इन नशीले द्रव्यों का सेवन अधिक-रूप से होता था उन्हीं में हार्टफेल का रोग होता था। अब जब से भारतवर्ष में नशों का आधिक्य हुआ है तब से यहाँ पर भी

हृत्कंपनावरोध (हार्टफेल) का रोग फैल गया है। चलता-फिरता मनुष्य मार्ग में ही लेट जाता है और किसी से कुछ नहीं कह पाता। यह भयंकर रोग फेफड़ों की कमजोरी से रक्त साफ न होने के कारण विषाक्त होकर हृत्कंपन को रोक देता है। इस लिए यदि जीवन चाहते हो और वह भी स्वास्थ्यप्रद, तो आज से ही इन नशीले द्रव्यों का सेवन छोड़ छुड़ा कर, आगे बतायी हुई हवन-पद्धति का आरम्भ कर दें, उसी में सबका कल्याण है।

परमात्मा की महत्ता

मनुष्य उसी वस्तु को अधिक कीमती समझता है जो संसार में सबसे कम होती है। जैसे कौड़ी की अपेक्षा पैसा, इकन्नी, दुअन्नी, चवन्नी, अठन्नी, रुपया, गिन्नी आदि धातुओं में लोहा, पीतल, ताँबा, चाँदी, सोना इत्यादि रत्नों में चुन्नी, पन्ना, मोती हीरा इत्यादि। यही मनुष्य बुद्धि की अदक्षता है कि वह कम से कम वस्तु को महत्ता देता है और असली रत्नों को छोड़कर पत्थरों के टुकड़ों को रत्न समझता है। जैसे कहा भी है।

> पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।
> मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते॥

पृथ्वी पर तीन रत्न हैं, जल अन्न और मधुर वचन। मूर्खों ने पाषाण के टुकड़ों को रत्न मान रक्खा है। क्योंकि भूख, प्यास लगने पर अन्न और जल के अभाव में तड़फ-तड़फ कर मनुष्य मर जायगा, किन्तु उसका एक भी रत्न काम नहीं आयेगा।

अस्तु, ठीक इसके विपरीत ईश्वर-कृतकार्य हैं, अर्थात् जो वस्तु संसार में सबसे अधिक परिमाण में है, वह उतनी ही जरूरी और कीमती भी है। जैसे वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। मनुष्यों के लिए पृथ्वी का अन्न भाग उतना उपयोगी नहीं जितना जल, क्योंकि देखा गया है कि अन्न के बिना केवल जल के आधार पर मनुष्य, पचहत्तर दिन तक जीवित रहे हैं। किन्तु जल के बिना उन्हें चन्द दिन भी जीना कठिन हो गया है और वायु के बिना पाँच मिनट भी जी नहीं सकता। इससे यह स्पष्ट मालूम हो गया कि सब प्राणियों के लिए वायु सबसे अधिक उपयोगी है और साथ ही वायु का परिमाण भी सबसे अधिक है अर्थात् सारा ब्रह्माण्ड वायु से परिपूर्ण है। सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरो को पवन घुमा रहा है तथा सब प्राणियों को प्रतिक्षण जीवन दे रहा है। यदि पाँच मिनट के लिए वायु एकदम रुक जाय तो सृष्टि का एक भी जीव जीता न बचे। वायु से कम और पृथ्वी से अधिक परिमाण में जल है, पृथ्वी के चारों ओर जल है तथा भीतर भी बराबर स्थान-स्थान पर जल भरा हुआ है और प्राणियों के लिए जल पृथ्वी की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध है। अग्नि आकाश वायु से कम और सब तत्त्वों से अधिक परिमाण में है। अग्नि के बिना वायु की क्रिया भी बन्द हो जायगी और वायु के बिना अग्नि भी प्रकट नहीं हो सकती इसलिये ये दोनों परस्पर सहयोगी मित्र कहे जाते हैं। अग्नि सभी पदार्थों को तरल करती है, जहाँ गरमी का प्रभाव

कम होता है वहाँ दूसरे की तो गिनती क्या जल तक जम जाता है। अग्नि का अभाव भी कम प्राणघातक नहीं। इससे स्पष्ट हो गया कि ईश्वर उन्हीं वस्तुओं को अधिक परिमाण में बनाता है जो अधिक उपयोगी होता है और मनुष्य उनको अधिक मूल्यवान समझता है जो संसार में कम हो। बस यही जीव की अल्पता और ईश्वर की महत्ता है।

वायु

पार्थिव अन्न भाग का विचार भक्ष्याभक्ष्य विषय में किया जा चुका है। अब वायु के विषय में विचार आरम्भ करते हैं। अन्न का नाम आहार और वायु का नाम विहार है। आहार जितना उपयोगी है विहार उससे भी कहीं अधिक उपयोगी है क्योंकि विहार के बिना एक क्षण भी जीना कठिन है। इस लिये शुद्ध हवा की परम आवश्यकता है। सारे शरीर का गन्दा रक्त हमारे फेफड़े में आता है और इसी प्राण वायु के संयोग से स्वच्छ होकर शुद्ध हो जाता है। तब वह शुद्ध रक्त हृदय में पहुँचता है तथा हृदय से पुन. सब शरीर में लौट जाता है। यही रक्तशोधन की नैत्यिक क्रिया है। प्राणवायु भी प्राण दान कर, शरीर का प्राणघातक विष लेकर पुनः बाहर लौट आता है। इसका भी यह व्यापार अटल है। चाहे सोते हों या जागते, वह बराबर चलता रहता है। यहाँ केवल आत्मिक सत्ता मात्र की आवश्यकता है।

नयी दुनियाँ के मनुष्य समझते हैं कि हमने रेलगाड़ी, हवाई-जहाज, मोटर, मोटर-साइकिल आदि यान कपास, चीनी, कपड़े आदि की धुआँधार मशीनें, सिगरेट बीड़ी सिगार आदि धुआँधार पदार्थ निकाल कर बड़ी उन्नति कर ली है। इसमें सन्देह नहीं हजारों का काम एक मशीन घण्टों में कर डालती है। कमसे कम पन्द्रह-बीस मिनट एक चिलम तमाखू बनाने पीने में लगेंगे और चिलम पीनेवाले के धुएँ का दाग भी हाथ में लग जाता है तथा मूछें भूरी पड़ जाती हैं। हाथ मुँह से बराबर दुर्गन्ध आती है। सिगरेट आदि में बीस मिनट की जगह दो मिनट भी नहीं लगते यहाँतक कि अनेक कामों में वह भी समय बच जाता है, काम के साथ साथ सिगरेट भी पिया जाता है। किन्तु हम इसे घोर अवनति का साधन समझते हैं। क्योंकि यान और मशीनरी के काम से हजारों मनुष्य बेकार हो गये जिससे बेकारी बढ़ गयी और चोरी डकैती का रोग बढ़ गया। सिगरेट आदि की उन्नति और भी हानिकर हुई, क्योंकि हुक्के में बीस मिनट व्यय होने के कारण तमाखू का अधिक खर्च नहीं होता था, जिससे देश के धन की बचत होती थी और अधिक मनुष्य पी भी नहीं पाते थे। अब तो बच्चा बच्चा तमाखू का व्यवहार कर रहा है। जिससे अर्थ की हानि के साथ-साथ स्वास्थ्य की भी हानि हो रही है।

चौबीस घण्टे में ऐसा कौन सा सेकेण्ड होगा जिसमें मशीनरी का विषैला धुआँ निकल कर दिगन्तव्यापी न होता हो और सिग-

रेट आदि का धुआँ विराम पाता हो। हमें तो ऐसा कोई जगह दिखायी नहीं देता जब रेलगाड़ी न चल रही हो और मुसाफिर या रोजगारी धुआँ न उगलते हों। इस बात पर जब हम विचार करते हैं तब हमारा हृदय काँप उठता है कि इतना अधिक विषैला धुआँ सम्पूर्ण वायुमण्डल में व्यापक हो रहा है, जो हम उससे बच नहीं सकते। तब हम स्वच्छ वायु कहाँ से ग्रहण करें। यथार्थ में यही कारण रोग वृद्धि का है। जो मनुष्य इन नशीले द्रव्यों का सेवन भी नहीं करते उनको विषमिश्रित वायु का सेवन करना ही पड़ता है। इस नवीन युग से पहले जितना विष पैदा होता था उससे कहीं अधिक जंगल थे जो वायु को स्वच्छ कर देते थे। किन्तु अब उनका भी अभाव कर दिया गया है और विष का परिमाण दिन प्रतिदिन की चेष्टा की जा रही है। फिर भला वायु कैसे स्वच्छ मिलेगी और हम स्वस्थ कैसे रह सकेंगे। इसी लिए प्रातः और सायंकाल वेद में ईश्वर ने अग्निहोत्र करने की आज्ञा की है। जिससे हमें दोनों समय शुद्ध वायु मिल सके।

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता।
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनसस्य दाता॥

अ० का० १९। अनु० ७। सू० ५५। मं० ३, ४॥

अर्थ—जो सन्ध्या २ काल में होम होता है वह हुत द्रव्य प्रातःकाल तक वायु शुद्धि द्वारा सुखकारी होता है ॥ ३ ॥ जो अग्नि में प्रातः २ काल में होम किया जाता है, वह २ हुत द्रव्य

सायंकाल पर्यन्त वायु की शुद्धि द्वारा बल बुद्धि और आरोग्यकारक होता है ॥ २ ॥

इस लिए प्रातः और सायंकाल को दोनों समय वेद मन्त्रों द्वारा हवन करना चाहिये जिससे वायु शुद्ध हो और आरोग्यता फैले।

प्रश्न—वेद मन्त्रों द्वारा ही हवन क्यों किया जाय वैसे क्यों नहीं ?

उत्तर—मन्त्र बोलने के दो प्रयोजन हैं। पहला मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जायँ और मन्त्रों की आवृत्ति होने से वे कण्ठस्थ रहें, वेद पुस्तकों का पठन पाठन और रक्षा भी होवे। दूसरा जब मनुष्य हवन करता हुआ मन्त्र बोलता है उस समय नाभि से लेकर शिर पर्य्यन्त सब अङ्गों में खून का वेग बढ़ जाता है तब मुख-नासिका द्वारा जानेवाला प्राणवायु हुत द्रव्यों से शुद्ध हुआ पेट में जाता है और स्वास्थ्य प्रदान करता है। यदि मौन रहकर हवन किया जायगा तो उतना लाभ नहीं होगा। क्योंकि उपरोक्त व्यायाम नही होगा।

प्रश्न—होम से क्या उपकार होगा ?

उत्तर—सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न—चन्दनादि घिस के किसी को लगावे या घृतादि खाने

को देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डाल के व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं।

उत्तर—जो तुम पदार्थविद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो जहाँ होम होता है वहाँ से दूर देश में स्थित पुरुष की नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है।

प्रश्न—जब ऐसा ही है तो केशर, कस्तूरी, सुगन्धित पुष्प और अतर आदि के घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुखकारक होगा।

उत्तर—उस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु को बाहर निकाल कर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न और हलका करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश कर देता है।

प्रश्न—क्या इस होम करने के बिना पाप होता है?

उत्तर—हाँ! क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त कराता है उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इस लिए उस पाप के निवारणार्थ उतना

सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिए, और खिलाने पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुख विशेष होता है। जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके, इससे अच्छे पदार्थ खिलाना चाहिए, परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है। इस लिए होम करना अत्यावश्यक है।

प्रश्न—प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक-एक आहुति का कितना परिमाण है ?

उत्तर—प्रत्येक मनुष्य को सोलह २ आहुति और छः २ माशे घृतादि एक एक आहुति का परिणाम न्यून से न्यून चाहिए और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इस लिए आर्य शिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे लोग बहुत सा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाय। ये दो यज्ञ अर्थात् ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना, पढ़ाना, सन्ध्योपासन, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करना, दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र से ले के अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ और विद्वानों की सेवा संग करना परन्तु ब्रह्मचर्य में केवल ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का ही करना होता है।

वायु सेवन के लाभ

अन्न जल की अपेक्षा वायु अधिक हितकर है और उनका सेवन भी अधिक करना पड़ता है। इस लिए इसका सेवन संयम-पूर्वक करना चाहिए। घर की वायु शुद्धि का उपाय तो हवन ऊपर बतलाया जा चुका। यदि घर-घर हवन होने लगे तो नगर भर की शुद्धि हो जाय और नगर नगर के हवन से समस्त देश की हवा शुद्ध हो जायगी तब कहीं रोग का नामोनिशान भी न रहेगा। इस लिए जितना शीघ्र हो इसके प्रचार में प्रयत्न करना चाहिए।

वर्त्तमान समय में नगर की अपेक्षा बाहर की वायु अधिक शुद्ध होती है। अतः सवेरे तथा सायंकाल नगर के बाहर बाग-बगीचों में वायु सेवन करने जाना उचित है। वहाँ की हवा उस समय स्वच्छ होती है, उसको लम्बी लम्बी श्वास से भीतर खींचना चाहिए। इससे अन्दर के रोग नष्ट होते हैं और नये उत्पन्न नहीं होने पाते। तथा छाती के भीतरी जकड़े हुए अवयव फैलते और पुष्ट होते हैं, इतना प्रतिदिन का पर्यटन शरीर की रग-रग खोलता है। यदि बगीचे की वायु में कसरत की जाय अथवा दौड़ लगायी जाय तो बहुत ही लाभ पहुँचेगा। कसरत के डेढ़-दो घण्टा बाद कोई वस्तु खाना चाहिए। इतने समय में शारीरिक मल विकार सब पच जाते हैं। जो लोग तत्काल खा लेते हैं उनको उतना लाभ नहीं होता, क्योंकि शारीरिक दोष उसके

तक बने रहते हैं। प्रातःकाल और सायंकाल को एकान्त में खुली हवा में बैठकर प्रतिदिन तीन-तीन प्राणायाम करके कुछ दिनों देख लें, कि उनका सीना कितना बढ़ जाता है।

प्राणायाम का फल

वायु में बड़ी शक्ति है। जब वह मोटर के टायर में भर दी जाती है तब वह कितने वजन को कितनी आसानी से हवा की तरह उड़ा ले जाती है, यह बात किसी से छिपी नहीं। प्रो० राम मूर्त्ति इसी के बल पर अस्सी मन का पत्थर छाती पर रखते थे और हाथी को पीठ पर चढ़ाते थे। वायु का शरीर में संग्रह प्राणायाम से ही होता है। प्राणायाम कहते हैं, प्राण के आयाम अर्थात् प्राण की लम्बाई को। प्राण के लम्बा बढ़ा लेने से योनियों की आयु बढ़ जाती है। इस लिए जो भी प्राणायाम करेगा वह अवश्य स्वस्थ और ताकतवर होगा तथा उसकी आयु बढ़ेगी।

प्राणायाम में तीन क्रियायें करनी पड़ती हैं। पहली क्रिया पूरक अर्थात् प्राणवायु को अत्यन्त धीरे-धीरे नासिका द्वारा अन्दर खींचने का नाम पूरक है। दूसरी क्रिया कुम्भक अर्थात् भीतर खींची हुई वायु को, खींचने के दुगुने तिगुने काल तक अन्दर रोक रखने का नाम कुम्भक है। तीसरी क्रिया रेचक अर्थात् भीतर ली हुई वायु को अत्यन्त धीरे-धीरे बाहर निकालने का नाम रेचक

है। पहली और तीसरी क्रिया करने में वायु के जाने का शब्द अपने को भी सुनायी नहीं देना चाहिए।

धीरे-धीरे प्राणायाम का काल बढ़ाना चाहिए, एक साथ बढ़ाने से लाभ के स्थान में हानि होने की सम्भावना है।

जल

जल हमारे बहुत काम में आता है। इसके बिना हमारा एक भी काम नहीं चलता, आटा सानने, दाल, भात, तरकारी आदि सभी खाद्य वस्तुओं के बनाने तथा पीने के काम में आता है। हमारे शरीर तथा भोजन में सत्तर फीसदी जल का अंश माना गया है। इस लिये जल के दूषित होने से भी हमारा स्वास्थ्य बहुत शीघ्र खराब हो सकता है। हलका जल मधुर तथा स्वादिष्ट है और वही हमारे लिए स्वास्थ्यप्रद भी है। भारी पानी नहीं। वह पीने में खारी होता है। उसे यदि पीना पड़े तो औटाकर पीना चाहिए, तब कोई हानि नहीं पहुँचायगा। जल हमेशा मोटे कपड़े से छान-कर पीना चाहिए। मनुष्य को प्रतिदिन दिनभर में अन्न से अठ-गुणा जल पीना चाहिए। ऋतु अनुसार कमोबेश भी किया जा सकता।

जब नगर में रोग फैल जाता है अथवा फैलने की सम्भावना होती है तब प्रायः बराबर देखने में आता है कि म्युनिस्पैलिटी की

ओर से नगर के सभी कुओं में लाल बुकनी डाली जाती है। इसका प्रयोजन केवल रोगकारक कीटाणु मार कर जल साफ करना होता है। अनेक स्थानों पर विना बुझा चूना भी डालते हैं, उससे भी यही लाभ होता है।

कुएँ का जल

उसी कुएँ का जल उत्तम होगा जिसके आस-पास कोई वृक्ष न होगा तथा सूर्य की किरणें कुएँ पर पड़ती होंगी। कुएँ का चबूतरा ऊँचा बाहर को ढलुआँ हो, जिससे बाहर का जल किसी भी हालत में भीतर न गिरने पाये। चबूतरे को छोड़कर कुएँ की गोलायी मात्र टीन से छायी हो जिससे चील्ह आदि पक्षियों की विषैली बीठ ऊपर से उसमें न गिरने पाये। पानी पीने और नहाने वाले इतना हटकर पियें और नहायें कि उनकी छींट कुएँ में न जाने पाये। कुएँ के इर्द-गिर्द गिरनेवाला पानी वहीं न सड़ने पाये इस लिए नाली बनाकर दूर बहा देना चाहिए। अथवा किसी फुलवाड़ी आदि में पहुँचा दें। कुएँ में पत्ते आदि किसी प्रकार का कूड़ा-करकट न पड़ना चाहिये। बर्तन माज कर बिना धोये कुएँ में न डाला जाय। प्रायः लोग इसका विचार नहीं करते, यह अच्छा नहीं। इससे कुआँ गन्दा होता और उसका जल बिगड़ जाता है। क्योंकि उच्छिष्ट और गन्दे पात्र का दूषित अंश कुएँ में

जाकर कीड़े पैदा करता है। यही अन्य वर्जित वस्तुओं का परिणाम होता है। ऊपर बताये हुए हानि लाभ के उपायों पर ध्यान देकर कुएँ के जल की परीक्षा करनी चाहिए।

नदी का जल

अन्य नदियों की अपेक्षा पर्वतीय नदियों का जल अच्छा स्वास्थ्यप्रद होता है। क्योंकि उनमें पर्वतीय जड़ी बूटियों तथा धातुओं का संसर्ग होता है और किसी प्रकार की गन्दगी भी उनमें मिलने नहीं पाती। कुएँ की अपेक्षा ऐसी नदी का जल, पीने और स्नान करने में अधिक स्वास्थ्यकर होता है।

समुद्र का जल

स्नान करने के लिए बहुत ही लाभदायक है। इस जल में खारीपन होता है जो शरीर का मैल साफ कर सब रोमकूपों को खोल देता है। इन खुले हुए छिद्रों द्वारा पसीना बाहर आता है और आयु अन्दर प्रविष्ट होती है। जो स्वास्थ्य के लिए बहुत हितकर है।

ब्रह्मचर्य

पहले बताये हुए आरोग्य साधनों के रहने पर भी यदि ब्रह्मचर्य का पालन न किया जाय तो भी आरोग्य लाभ नहीं हो सकता। क्योंकि असली मूल शक्ति का नाश कर देने पर बाहरी उपचार उसकी रक्षा नहीं कर सकते। जैसे कोई वृक्ष के शाखा-पल्लवों पर किसी प्रकार का अघात न पहुँचने दे, और उसकी जड़ काट दे, जैसी अवस्था उस वृक्ष की होगी वैसी ही अवस्था निरर्थक वीर्य नाश करने वाले की होगी।

आरोग्य चाहने वाले को ब्रह्मचर्य की रक्षा सबसे पहले करनी चाहिए। इसी लिए वेदादि सत् शास्त्रों ने चार आश्रमों का विधान किया है अर्थात् आयु के चार भाग बाँट दिये हैं। यदि मनुष्य उसके आदेशानुसार चले तो वह सभी आश्रमों में रहता हुआ ब्रह्मचारी रहता है—

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति। आषोडशाद्वृद्धिराचतुर्विंशतेर्यौवनमाचत्वारिंशतः सम्पूर्णता ततः किञ्चित्परिहाणिश्चेति॥

अर्थ—सोलहवें वर्ष से आगे मनुष्य के शरीर के सब धातुओं की वृद्धि और पचीसवें वर्ष से युवावस्था का आरम्भ, चालीसवें वर्ष में युवावस्था की पूर्णता अर्थात् सब धातुओं की पूर्णपुष्टि और उससे आगे किंचित् २ धातु वीर्य की हानि होती है अर्थात् ४०

(चालीसवें) वर्ष सब अवयव पूर्ण हो जाते हैं। पुनः खानपान से जो उत्पन्न वीर्य धातु होता है वह कुछ २ क्षीण होने लगता है। इससे यह सिद्ध होता है कि यदि शीघ्र विवाह करना चाहें तो कन्या १६ (सोलह) वर्ष की और पुरुष २५ (पचीस वर्ष) का अवश्य होना चाहिए। मध्यम समय कन्या का २० (बीस) वर्ष पर्यन्त और पुरुष का ४० (चालीसवाँ) वर्ष और उत्तम समय कन्या का चौबीस वर्ष और पुरुष का ४८ (अड़तालीस) वर्ष पर्यन्त का है। जो अपने कुल की उत्तमता, उत्तम सन्तान दीर्घायु सुशील बुद्धि बल पराक्रम युक्त विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें वे १६ (सोलहवें) वर्ष से पूर्व कन्या और २५ (पचीसवें) वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें। यही सब सुधार का सुधार, सब सौभाग्यों का सौभाग्य और सब उन्नतियों की उन्नति करनेवाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रख के अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिससे उत्तम सन्तान होवें।

ऋतुदान का फल

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतस्सदा
पर्ववर्जं ब्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ १ ॥
ऋतु' स्वाभाविकः स्त्रीणाँ रात्रयः षोडश स्मृता ।
चतुर्भिरितरैः सर्द्धमहोभिः सद्भिर्गर्हितैः ॥ २ ॥
तासामाद्याश्चतस्त्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ३ ॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम् ॥ ४ ॥
पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्याधिके स्त्रिया ।
समे पुमान पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्यय ॥ ५ ॥
निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ।
ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ६ ॥

मनुस्मृतौ अ० ३ ॥

अर्थ—मनु आदि महर्षियों ने ऋतुदान के समय का निश्चय इस प्रकार से किया है कि सदा पुरुष ऋतुकाल में स्त्री का समागम करे और अपनी स्त्री के विना दूसरी स्त्री का सर्वदा त्याग रक्खे। वैसे स्त्री भी अपने विवाहित पुरुष को छोड़ के अन्य पुरुषों से सदैव पृथक् रहे। जो स्त्री-व्रत अर्थात् अपनी विवाहिता स्त्री ही से प्रसन्न रहता है जैसे कि पतिव्रता स्त्री अपने विवाहित

पुरुष को छोड़ दूसरे पुरुष का संग कभी नहीं करती वह पुरुष जब ऋतुदान देता हो तब पूर्व अर्थात् जो इन ऋतुदान के (सोलह) दिनों में पौर्णमासी, अमावस्या चतुर्दशी वा अष्टमी आवे उनको छोड़ देवें इसमें स्त्री पुरुष रति क्रिया कभी न करें ॥ १ ॥ स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल १६ (सोलह) रात्रि का है अर्थात् रजो-दर्शन दिन से लेके १६ (सोलहवें दिन तक ऋतु समय है इसमें प्रथम की चार रात्री अर्थात् जिस दिन रजस्वला हो उस दिन से ले चार दिन निन्दित हैं प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ रात्रि में स्त्री पुरुष का स्पर्श और स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कभी न करें। अर्थात् उस रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवें, न वह स्त्री कुछ काम करे किन्तु एकान्त में बैठी रहे क्योंकि इन चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महारोगकारक है। रज. अर्थात् स्त्री के शरीर से एक प्रकार का विकृत उष्ण रुधिर जैसा कि फोड़े में से पीप वा रुधिर निकलता है वैसे है ॥ २ ॥ और जैसे प्रथम की चार रात्रि ऋतुदान देने में निन्दित हैं वासी रही दश रात्रि सो ऋतुदान देने में श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ जिनको पुत्र की इच्छा होवे छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं चौदहवीं और सोलहवीं ये छः रात्रि ऋतुदान में उत्तम जानें परन्तु इनमें भी मध्यम श्रेष्ठ हैं और जिनको कन्या की इच्छा हो वे पांचवीं, सातवीं, नवीं और पन्द्रहवीं ये चार रात्रि उत्तम समझें इससे पुत्रार्थी युग्म रात्रियों में ऋतुदान देवे। रात्रिगणना इसलिए की है कि दिन में ऋतुदान का

निषेध है ॥ ४ ॥ पुरुष के अधिक वीर्य्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्त्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसक पुरुष वा बन्ध्या स्त्री क्षीण और अल्पवीर्य से गर्भ का रहना वा रहकर गिर जाना होता है । ॥ ५ ॥ जो पूर्व निन्दित ८ (आठ) रात्रि कह आये हैं उनमें जो स्त्री का संग छोड़ देता है वह गृहाश्रम में बसता हुआ भी ब्रह्मचारी ही कहाता है ।

उपरोक्त बताये नियमों का पालन करने वाला पुरुष निश्चय सौ वर्ष पर्यन्त निरोग और सुदृढ़ अङ्गों से जीता है । उसके शरीर की खाल झूलने नहीं पाती । क्योंकि परमात्मा से प्रति दिन दो बार सन्ध्या में प्रार्थना की जाती है । अर्थात्—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरद शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।

॥ यजु० अ० ३६ म० २४ ॥

"उस सर्वद्रष्टा परमात्मा की कृपा से हम सौ शरद ऋतु अर्थात् सौ साल देखें, सौ वर्ष तक सुनें, सौ वर्ष तक बोलें, सौ वर्ष अदीन स्वतन्त्र अर्थात् किसी के गुलाम न रहकर जीवें । इस सौ वर्ष के बाद फिर सौ वर्ष पर्यन्त जीवें—अर्थात् तीन सौ वर्ष सब इन्द्रियों के बलों से युक्त हृष्ट-पुष्ट और निरोग रहते हुए जीवें । यह सर्वाङ्ग पूर्ण आयु ब्रह्मचर्य तथा योगाभ्यास से प्राप्त होती है ।

रोग चिकित्सा

अब तक जो कुछ लिखा गया है, उसमें रोगोत्पत्ति के पूर्व स्वस्थ रहने का तरीका दिखाया गया है। इसके आगे रोग उत्पन्न होने पर रोग चिकित्सा दिखायी जायगी। पहले लिखा जा चुका है कि सम्पूर्ण रोगों का कारण मलों का कुपित होना है और मल मिथ्याहार-विहार से कुपित होते हैं। अर्थात् दूषित अन्न, जल, वायु, रहन-सहन असमय खाना प्रकृति विरुद्ध मांस नशा आदि अथवा शीत उष्ण पदार्थों का सेवन करना मलों को कुपित कर देता है। इस लिए सयत आचार विचार की परम आवश्यकता है। जब रोग उत्पन्न हो ही जाय तब उसके निवारण का उपाय भी वहीं से करना चाहिये, जहाँ से रोग उत्पन्न हो।

उपवास चिकित्सा

छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्।

अर्थात् मूल कट जाने पर न शाखा और न पत्ते ही रह जाते हैं। जब आहार ही बन्द कर दिया जाय तब रोग कहाँ से होंगे। चाहे कोई भी रोग क्यों न हो भोजन बन्द कर देने से अवश्य नष्ट हो जायगा। इसी को उपवास कहते हैं।

यदि मनुष्य महीने में चार दिन उपवास कर लिया करे तो

रोग उत्पन्न ही न हो। आजकल जो उपवास करते हैं उनका अच्छा तरीका नहीं। क्योंकि दिन भर कुछ न खाकर रात को फलाहार के नाम पर वे इतना ठूँस-ठूँस कर खाते हैं कि जितना रोज न खाते होंगे और वे फलाहारी पदार्थ भी इतने गरिष्ठ होते हैं कि दूसरे दिन अजीर्णता का रूप धारण कर लेते हैं। इस लिए ऐसी उपवास विधि को छोड़कर उसका असली रूप धारण करना चाहिये।

जो दिन उपवास के लिये नियत किये हों उन दिनों में प्रातः काल एक पाव गाय या बकरी का दूध तीन उफान देकर हलका मीठा मिला पी लें। फिर दिनभर कुछ न खायें। किन्तु दिन में थोड़ा थोड़ा पानी अनेक बार पियें। रात को भी एक पाव दूध के अतिरिक्त और कुछ न खायें। इस नियम का पालन करने वाले सदैव निरोग रहेंगे।

यदि किसी रोग की निवृत्ति के लिए उपवास करना हो तो दिन की संख्या बढ़ानी होगी अर्थात् साप्ताहिक, पाक्षिक, चान्द्रा-यण इत्यादि अनेक तरह के उपवास हैं। जिनके भिन्न भिन्न तरीके भी हैं। उनका कुछ दिग्दर्शन आगे कराया जायगा।

———

साप्ताहिक अर्धोपवास

जिस मनुष्य को साप्ताहिक उपवास करना हो, वह अपने हर रोज खाने वाले भोजन के आठ भाग कर डाले अर्थात् बत्तीस ग्रास भोजन करने वाला आठ ग्रास का त्याग रोज कर दे। इस प्रकार चार दिन में सर्वांश त्याग हो जायगा किन्तु उस दिन केवल पाव भर दूध पी कर रह जाय। पाँचवें दिन से फिर आठ आठ ग्रास बढ़ाना आरम्भ कर दे और अपनी पूरी खुराक तक पहुँच जाय। उपवास काल में जल यथेष्ट उपयुक्त है तथा व्यायाम भी अवश्य करना चाहिये। चाहे दौड़े या दण्ड बैठक। इनमें से कुछ न कुछ अवश्य कर्त्तव्य समझ कर करे। इससे शरीर के सम्पूर्ण मल पच जाते हैं और शरीर आरोग्य हो जाता है।

पाक्षिक, मासिक या (चान्द्रायण) अर्धोपवास

इन उपवासों में भी पूर्वोक्त प्रकार से ग्रासों के भाग बाँट लें और क्रमशः घटाते जायँ। अर्थात् पाक्षिक हो तो दो ग्रास और मासिक हो तो एक ग्रास प्रति दिन घटाना चाहिये। मासिक का आरम्भ पूर्णमासी से पूर्णमासी तक होता है। अर्थात् जिस प्रकार चन्द्र की एक एक कला प्रतिदिन घटती जाती है उसी प्रकार

मनुष्य की खुराक भी एक एक ग्रास कर घटती जाती है और जैसे ही अमावस्या के बाद चन्द्रकला बढ़ने लगती है वैसे ही मनुष्य की ग्रास संख्या बढ़ती जाती है। इस लिए इसे चन्द्रायण व्रत भी कहते हैं। इस अर्धोपवास के करने से बहुत से कठिन पुराने रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

पूर्णोपवास

जिस मनुष्य के पुराने रोग न जाते हों उसे पूर्णोपवास करना चाहिये। पूर्णोपवास करना बड़ा कठिन है। दो तीन दिन का उपवास इतना कठिन नहीं जितना साप्ताहिक या पाक्षिक आदि होता है। इस लिए बड़े उपवास में किसी वैद्य डाक्टर आदि की सहायता अवश्य ले लेनी चाहिये। क्योंकि यह कठिन उपवास किन्हीं असाध्य रोगों की निवृत्ति के लिए किये जाते हैं। इनमें प्रारम्भ से ही अन्न त्याग दिया जाता है। केवल कुछ दिनों तक फलों का रस और फिर उसका भी त्याग कर देते हैं। कभी-कभी बलाबल देखकर केवल एक दिन नीबू के रस का शरबत देकर फिर कुछ नहीं दिया जाता। पानी बराबर यत्न से पिलाया जाता है उसमें त्रुटि नहीं की जाती। बल्कि इच्छा न रहने पर भी थोड़ा-थोड़ा जल अवश्य दिया जाता है। क्योंकि लिखा है—

"अद्भिर्विना ग्लायन्ते प्राणाः"

जल के बिना प्राणशक्ति निर्बल हो जाती है। जल ही शरीर के विकारों का नाश करता है और विषैले मलों को बाहर निकालता है। इस लिए इसका किसी भी अवस्था में त्याग न करना चाहिये।

पूर्णोपवास की समाप्ति

पूर्णोपवास का आरम्भ काल इतना कठिन नहीं होता जितना उपवास तोड़ते समय होता है। यह समय बहुत ही नाजुक होता है। अतएव उस समय बड़ा समझ कर चलना चाहिये।

पहले दिन—चार चार घण्टे पर दिन में चार बार ताजे फलों का रस शक्ति के अनुसार देना चाहिये।

दूसरे दिन—रस की मात्रा शक्त्यानुसार थोड़ी या दूनी कर देनी चाहिये।

तीसरे दिन—गाय या बकरी का ताजा दूध आध पाव से पाव भर तक तीन उफान देकर उतरा गुनगुना मिश्री का मीठा मिला गुनगुना होने पर पिला दे। इसके बाद चार चार घण्टे पर फलों का रस दे।

चौथे दिन—प्रातःकाल दूध और फिर तीन घण्टा पर हरा साग उबाल कर उसका रस, फिर हर तीसरे घण्टे पर फलों का रस, इस प्रकार पाँच बार दिन में देना चाहिये।

पाचवें दिन—मूँग की दाल का पानी, दूध, फलों का रस, हरे सागों का रस तथा जौ के आटे का पानी देना चाहिए।

छठवें दिन—दूध और जौ का दलिया हर तीसरे घण्टे पर देना चाहिये। पहले दलिया फिर दूध, फिर दलिया फिर दूध इसी प्रकार क्रम से पाँच बार दे।

सातवें दिन—मूँग की दाल, दलिया और दूध पाँच बार दिन में देना चाहिये। ताजे फल भी खिलाने चाहियें।

पत्पश्चात् क्रमशः सभी वस्तुएँ बढ़ाते जायँ। यहाँ तक कि भोजन अपनी पूरी खुराक तक पहुँच जाय और जिस रोग के लिए यह उपवास किया हो वह शेष न रहे। रोग के अनुसार उपवास की वृद्धि की जाती है यदि सात दिन में रोग नष्ट न हो तो पाक्षिक अथवा मासिक उपवास की व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

जल चिकित्सा

पट्ट होकर भाफ ले। जहाँ-जहाँ रोग का अधिक आक्रमण हो वहाँ वहाँ अच्छी तरह भाफ से सेकना चाहिए। जब समय पूरा हो जाय और शरीर से पसीना खूब निकल चुके, तब उपचारक लोग अँगीठी निकाल लें और पतीली खाट के नीचे रक्खी रहने दें। अँगीठी निकालते समय रोगी को हवा न लगने पाये इस बात की सावधानी रखना चाहिए। जब अँगीठी निकाल ली जायँ तब एक उपचारक पानी भरी बाल्टी दोनों हाथ में उठा ले और दूसरा उपचारक कम्बल हटा दे। कम्बल के हटते ही सिर से पाँव तक बाल्टी का पानी डाल दिया जाय। तत्काल कम्बल हटाने वाला उपचारक दूसरी बाल्टी उस पर धीरे-धीरे डाले ताकि स्नाता मल-कर नहा सके।

अच्छी प्रकार स्नान करने के बाद तौलिये से खूब रगड़ कर सारे शरीर को पोंछ डाले। तत्पश्चात् टब में रक्खी हुई तिपायी पर बैठ जाय और दोनों पाँव बाहर की चौकी पर रख ले। टब में बैठने पर स्नाता का पेट लेकर जंघाओं का भाग पानी में डूबा रहे और पेट से ऊपर तथा सिर तक तथा जंघाओं से लेकर पाँव तक का सारा भाग पानी से बाहर रहे। इस प्रकार बैठ जाने पर मोटे तौलिये से पेट को नाभि की ओर से नीचे को बहुत धीरे-धीरे मुलायम हाथसे मले।

यदि रोगी निर्बल हो तो पानी से बचे हुए शरीर के भाग को कम्बल से ढँक दे जिससे उसे अँगों में सर्दी न लगने पाये।

अन्यथा खुला रहने दे। यदि मरीज बहुत कमजोर हो अथवा पागल हो तो उसे भाफ का स्नान नहीं कराना चाहिए उनके लिए पेट स्नान ही उपयुक्त है। ऐसे रोगी को पसीने की आवश्यकता हो तो सूर्य ताप से लाना चाहिए। सवेरे या शाम को जब हलकी धूप हो, तब रोगी को उसमें नंगे बदन खाट पर लिटा दे। आँखों पर सूर्य की चमक न पड़ने दे। इस लिए उसके सिर व आँखो को कपड़े से ढँक दे। जब रोगी को धूप लेने की इच्छा न रहे तब हटा देना चाहिए।

पेट स्नान करते समय उस कमरे के सब द्वार खोल देने चाहिएँ। जिससे कमरे में पर्याप्त हवा आ सके। यदि उस कमरे में हवा आने का मार्ग अच्छा न हो तो पहले से ही ऐसे कमरे की व्यवस्था कर लेनी चाहिए। जिसकी आवश्यकतानुसार हवा रोकी जा सके और समय पर प्रगट की जा सके। पंखे आदि से हवा न करनी चाहिए, प्रत्युत वहाँ स्वाभाविक हवा अपेक्षणीय है। टब आदि में स्नान करने का पानी भी स्वभाव ही से शीतल होना चाहिए नकि बर्फ आदि से शीतल किया हुआ।

पेट का स्नान तभी तक करना उचित है जब तक शरीर में सर्दी न लगने लगे। इच्छानुसार स्नान करना अच्छा है। प्रारम्भ में अल्पकाल स्नान करे, फिर धीरे-धीरे समय बढ़ावे।

टब की क्रिया समाप्त हो जाने पर गमछे से शरीर पोंछ कर निर्बल रोगी को कपड़े उढ़ा दे जिससे उसके शरीर में गर्मी आ कर

पसीना आ जाय। पसीने का आना बहुत आवश्यक है क्योंकि इसी से शरीर के रोम-कूपों के छिद्र खुलकर रोग नष्ट होते हैं और शरीर का अँग-प्रत्यंग खुल जाता है। यदि रोगी ताकतवर हो तो लंगोट पहन कर व्यायाम आरम्भ कर दे अथवा कपड़े पहन के बाहर शुद्ध वायु सेवन करने के लिए निकल जाय। मार्ग में उसकी गति इतनी शीघ्र होनी चाहिये कि उसे पसीना आ जाय। इस प्रकार स्वाभाविक शरीर की गरमी शरीर में आ जाने से स्वास्थ्य प्राप्त होता है।

इन्द्रिय स्नान

इन्द्रिय स्नान पेट स्नान के साथ-साथ भी होता है। किन्तु जिन्हें पेट स्नान नहीं करना हो, उन्हें केवल इन्द्रिय-स्नान की आवश्यकता हो तो वे एक काठ की चौकी बनवा ले। उस चौकी के तीन ओर चूल हो और एक ओर न चूल न हो, उस पर साफ चिकने पतले और मजबूत फट्टे जड़े हों। उसके नीचे, आधा भीतर और आधा बाहर एक बड़ा खुले मुँह का पात्र रक्खा हो और वह पानी से नकोनक भरा हो। उस चौकी पर रोगी नग्न होकर बैठ जाय और अपनी मूत्रेन्द्रिय के अगले बढ़े हुए चमड़े को उस पात्र के जल में डुबा दे, तथा दाहिने हाथ में कपड़ा लेकर पानी में डूबे चमड़े को धीरे-धीरे नीचे की ओर रगड़े। किन्तु

ध्यान रहे कि इन्द्रिय की सुपारी पर इसकी रगड़ न लगने पावे और शरीर का कोई अँग न भीगने दें।

रोगी के बलाबल के अनुसार दस मिनट से लेकर आध घन्टे तक यह क्रिया की जा सकती है। इन स्नानों के लिए जल जितना भी शीतल होगा उतना ही अधिक लाभ होगा और पानी का परिमाण भी अधिकाधिक होना अच्छा है।

स्त्रियाँ भी उसी प्रकार चौकी पर बैठ कर कपड़े को भिगोकर योनि का अग्रभाग धोयें उनकी भी इन्द्रिय सम्बन्धी तथा मासिक धर्म आदि तक की बीमारियाँ दूर हो जायँगी। किन्तु स्त्रियों को मासिक धर्म के समय कोई भी उपरोक्त चिकित्सा न करनी चाहिये। जिन स्त्रियों का रजोधर्म तीन चार दिन में स्वच्छ नहीं हो जाता, और पाँच-छः दिन तक होता रहता है उन्हें इस रोग निवृत्ति के लिए स्वच्छ होते ही इन्द्रिय स्नान नियम से आरम्भ कर देना चाहिये।

आवश्यक बातें

(१) भाप स्नान रोगी के बलाबल के अनुसार सप्ताह में दो अथवा तीन बार तक दिया जा सकता है।

(२) पेट का स्नान भी रोगी के बल के अनुसार दिन में एक बार से लेकर तीन बार तक दिया जा सकता है। शीतकाल में पेट स्नान लेते समय नग्न अंगों को ठण्ड से बचाना चाहिए। उन पर कोई गरम कपड़ा अवश्य डाल दे। और गरम कपड़ा पहनकर ही बाहर घूमने जाय। यदि थोड़ा व्यायाम करके घूमने जाय तो और भी अच्छा है।

(३) यदि जल चिकित्सा करने के दिनों में अर्धोपवास का कुछ प्रयोग किया जाय तो और भी अधिक लाभ हो।

(४) इस चिकित्सा में दालें बहुत ही कम परिमाण में खानी चाहियें। यदि न खायी जायँ तो और भी अच्छा है। बिना मसाले के हरे शाक-पात फल आदि अन्न की अपेक्षा जितने भी खाये जायँ उतने ही अच्छे हैं। हाथ की चक्की के मोटे बिना छने आटे की रोटी। चावल, जौ या गेहूँ का दलिया नमक या गुलाबी मीठे के साथ दूध मठा दही मक्खन इस प्रकार के जल्दी हजम होने वाले पदार्थ खाने चाहियें। भीगे हुए चने या हुरहा आदि कच्चे अन्न भी बहुत लाभदायक हैं।

(५) इन्द्रिय स्नान दिन में तीन बार करना चाहिए।

(६) इस चिकित्सा पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिए। इसको आरम्भ कर कभी न त्यागना चाहिये। क्योंकि यह चिकित्सा भयङ्कर से भयङ्कर रोगी को भी निराश नहीं होने देती। हाँ, किसी प्रकार इसका फल होता न दिखायी दे तो पहले अपनी कमी को ढूंढे यदि समझ में न आवे तो किसी अनुभवी वैद्य या डाक्टर की सहायता अवश्य ले।

स्त्री सम्बन्धी रोगों की चिकित्सा

स्त्रियाँ प्रायः अपने रोगों को सङ्कोचवश छिपाया करती हैं। इन्हें अपने रोगों की पहचान भी नहीं होती। इस लिए उनके उन्हीं रोगों का कुछ विशेष रूप से नीचे विचार किया जायगा जो केवल उनको ही होते हैं।

प्रदर

सफेद, पीला, हरा और लाल चार प्रकार का प्रदर होता है। पहले सफेद रंग का लसलसदार पानी स्त्रियों की योनि से समय असमय निकलने लगता है। फिर वही चिकित्सा न करने से पुराना होने पर पीला तथा हरा रंग धारण कर लेता है। यदि इतने पर भी ध्यान न दिया जाय तो वही रक्त प्रदर हो जाता है। जो कठिन साध्य हो जाता है।

यह रोग अविवाहिता लड़कियों को भी हो जाता है। उसके दो कारण होते हैं। पहला कारण उसके माता-पिता होते हैं, जिन को सूजाक की बीमारी होती उनकी लड़की को भी प्रायः प्रदर रोग हो जाता है और दूसरा कारण उस लड़की की दुश्चरित्रता भी होता है।

प्रदर के लक्षण

इस रोग के होने पर कब्ज, अजीर्णता, हाथ पाँव तथा कमर में पीड़ा, उत्साह हीनता, तबीयत में भारीपन धीरे-धीरे जब अधिक बढ़ जाता है तब हमेशा तन्द्रा घेरे रहे, भूख मर जाय, देह दुर्बल हो जाय, आँखों से कम सूझे, सूरत बिगड़ जाय, जी मिचलाय और पाखाना अनेक दिन पर होने लगे। इतने लक्षणों के उभड़ आने पर रोग का पूर्ण प्रकोप समझना चाहिए। रोग का इलाज प्रारम्भ करना अच्छा है, रोग बढ़ने पर कठिनायी पड़ती है।

चिकित्सा

पहले पेट साफ करने वाले दुग्धादि पदार्थों का सेवन करना चाहिए। तथा दस्तावर वस्तुयें ही भोजन में आनी चाहिए। रोगी बलवान हो तो सप्ताह में दो बार भाप स्नान करा देना चाहिए। दिन में एक बार पेट-स्नान और तीन बार इन्द्रिय स्नान कराना

चाहिए। भोजन आदि की विधि स्नान चिकित्सा में पीछे दिखायी जा चुकी है, वैसी ही बर्त्तनी चाहिए। यदि निर्बल हो तो भाप-स्नान त्याग कर और सभी स्नान करा देने चाहिएँ।

मासिक धर्म

गर्भावस्था और दूध पिलाने के समय मासिक-धर्म रुक जाता है। तथा रजोदर्शन की अवस्था से पूर्व या पैंतालीस वर्ष की अवस्था के बाद मासिक-धर्म रुक जाता है इन चारों दशाओं के अतिरिक्त यदि ऋतु धर्म ठीक समय पर न हो अथवा तीन-चार दिन कमोबेश समय लगे और पेट में किसी प्रकार का कष्ट प्रतीत हो तो समझ लेना चाहिए कि कोई रोग है। शुद्ध मासिकधर्म में दो दिन बराबर गुलदाऊदी फल के रंग की भाँति अत्यन्त लाल रक्त गिरता है। तीसरे दिन कम होकर चौथे दिन बिलकुल बन्द हो जाता है।

दूषित ऋतुधर्म के लक्षण

कमर और पीठ में दर्द, पेड़ू में भारीपन, सब शरीर में पीड़ा, स्तनों में दर्द, सिर भारी, उठना-बैठना बुरा मालूम हो, कोई काम करने में जी न लगे। तन्द्रा आलस्य घेरे रहे। रक्त कम गिरना या अधिकतर गिरना। जी मिचलाना अथवा खट्टी डकार होना।

उसके कारण

...चिन्ता अजीर्णता अट-सट खाना पोना तथा अधिक पुरुष-सम्भोग से अण्डकोषों का हट जाना, रक्त के साथ झिल्ली का निकल आना, गर्भाशय की वृद्धि से। आलसी जीवन बनाने से, रक्ताधिक्या व न्यूनता से, योनि संकोच से यह रोग उत्पन्न होता है।

उसकी चिकित्सा

पहले एनीमा से पेट के मल की सफाई कर देनी उचित है। फिर दिन में दो बार पेट स्नान और तीनवार इन्द्रिय स्नान कराना चाहिए। व्यायाम और हवा में भ्रमण करे। भोजन आदि की व्यवस्था जैसी पहले बतलायी गयी है वैसी रखना चाहिए। चिन्ता भय शोक और पुरुष सहवास त्याग देना परम आवश्यक है।

जी मिचलाना

गर्भ स्थित होने के कुछ दिन बाद स्त्रियों का जी मिचलाने लगता है। मुँह में पानी बार-बार भर आता है, कभी-कभी वमन भी हो जाता है। खाने-पीने की इच्छा नहीं रहती। खाद्य पदार्थों में बदबू सी मालूम होती है। हर बात में ग्लानि मालूम होती है।

अवश्य पीना चाहिये। दिन में तीन-चार बार ताजे जल में नीबू का रस मिलाकर पीवें। इन उपचारों से पेट साफ होकर उसकी गरमी शान्त हो जायगी।

गर्भाशय के रोग

गर्भाशय का हट जाना या टेढ़ापन, बन्ध्यात्व, गर्भाशय में जख़्म, गर्भ गिरना, अण्डकोष में जलन, गर्भाशय का सूज जाना, गर्भाशय में पीड़ा इत्यादि अनेक रोग हैं।

कारण

इन रोगों का प्रधान गन्दे विजातीय द्रव्यों का इकट्ठा हो जाना है, और छोटी अवस्था में पुरुष-सहवास से तथा बड़ी आयु में भी अधिक पुरुष सहवास से ये रोग उत्पन्न होते हैं।

लक्षण

गर्भाशय दोनों ओर से बन्धनों से बँधा होता है, जिस कारण वह बीच में लटका रहता है। विजातीय द्रव्यों के बोझ से वह अपने स्थान से हट जाता है। तब बार-बार पेशाब आता है या बन्द हो जाता है, पाखाने पेशाब जाने में कष्ट होता है, योनि-द्वार से माँस बाहर निकल आता है। गर्भाशय में गन्दा माँस बढ़ जाता है तब गर्भ नहीं ठहरता, अण्डकोषों के इर्द-गिर्द पीड़ा होती है, अण्डकोषों में पककर मवाद आ जाता है, जी मिचलाना, वमन हो

जाना और ज्वर का आना, ऐसे ऐसे अनेक लक्षण पैदा हो जाते हैं। इनका इलाज यदि जल्दी न किया जाए तो प्राण तक नौबत पहुँच जाती है।

चिकित्सा

ऐसे रोगों की चिकित्सा कुछ दिन जमकर करनी चाहिए तब अवश्य लाभ होगा। क्योंकि ये रोग बड़े कठिन होते हैं। इनके लिए धैर्य और विश्वास की आवश्यकता होती है। भाप स्नान सप्ताह में दो बार और पेडू स्नान दिन में तीन बार तथा इन्द्रिय स्नान भी तीन बार करना चाहिए। भोजन विधि तथा उपचार बताये जा चुके हैं।

गर्भावस्था के रोग

गर्भावस्था में दस्त या कब्ज, रक्तस्राव, पेट में दर्द, छाती या पसली के नीचे पीड़ा, पेशाब का रुकना या बार-बार जाना, अकाल प्रसव, प्रसव के पूर्व प्रसव-वेदना की प्रतीति, योनिद्वार में खुजली होना इत्यादि अनेक रोग होते हैं।

कारण और चिकित्सा

करना चाहिये। जिससे हलके भोजन से मल संचित न हो और संचित का निकास एनीमा द्वारा करना चाहिए। तथा पेट और इन्द्रिय-स्थान दिन में तीन बार करना अति हितकर है प्रातःकाल नित्य उठकर बासी मुँह पानी पीकर टहलना और दिन में दो तीन बार ताजे जल में नीबू निचोड़ पर पीना चाहिए। भोजन जल-चिकित्सानुसार करना चाहिए।

प्रसवकाल के रोग

प्रसव वेदना, प्रसवकाल में मूर्छा, प्रसव होने में बाधा, असह्य प्रसव, ये रोग प्रसवकाल में उत्पन्न हो जाते हैं।

कारण और चिकित्सा

गर्भ अवस्था में कब्ज का रहना, अनमेल गरम सर्द पदार्थों का सेवन, गरिष्ट भोजन, कमजोरी इत्यादि कारणों से प्रसव कालिक रोग पैदा होते हैं। इन बाधाओं को दूर करने के लिए पेट की सफायी एनीमा द्वारा करनी चाहिए और पेट, इन्द्रिय स्नान करना तथा भोजन छादन की व्यवस्था ठीक रखनी चाहिए। फल दूध, दलिया आदि हलके पदार्थ सेवन करने में उत्तम हैं। मूर्छावस्था में खूब खुली हवा में प्रसूतिका को सुलावें और आँख मुँह पर ठण्डे पानी के छींटे देवे गले तथा पेड़ू पर ठण्डे पानी की पट्टी बाँधकर उसे पाँच-पाँच मिनट पर बदलते रहें इन उपचारों से प्रसूतिका को अवश्य आराम होता है।

प्रसव का सरल उपाय

गर्भवती स्त्री को चाहिए कि प्रसवकाल समीप आने पर पेट और इन्द्रिय का स्नान आध-आध घण्टे में करे तथा गीली मट्टी की पट्टी पेट पर चढ़ाये इस भाँति उपचार करने से प्रसव आराम से हो जाता है। प्रसव के कुछ दिन पूर्व से ही हलका भोजन कर दें। पेट तथा इन्द्रिय स्नान प्रति दिन एक-एक बार ले ले। जिस दिन प्रसव होने को हो उसकी विधि ऊपर बताई गयी। उस दिन केवल गाय या बकरी का दूध हलका गरम पिलाना चाहिए और कुछ नहीं। हलका भोजन प्रसवकाल में बड़ा लाभ पहुँचाता है।

प्रसव होने पर रोग

आँवल का न गिरना, रक्तस्राव, आँवल गिरने पर पेडू व कमर में प्रसव के समान पीड़ा, कब्ज से पेट में दर्द, भूख का न लगना, पेशाब का न उतरना, प्रसूत ज्वर, उन्माद, दूध का ज्वर, स्तनों से दूध का बहना या कम होना, इत्यादि अनेक रोग हो जाते हैं।

कारण और उपाय

प्रसूतिका का आँवल जब अन्दर रह जाय तब उसे जबरदस्ती निकालने की चेष्टा न करनी चाहिये। क्योंकि इसमें प्राण तक जाने का भय रहता है। उस पर गीली मट्टी की पट्टी बाँधने से,

दर्द होकर वह स्वयं आसानी से बाहर गिर जायगा। आँवल न गिरने पर कभी-कभी रक्त बहने लगता है आँवल के भीतर रह जाने से गर्भाशय सिकुड़ने नहीं पाता और नालियों के मुँह खुले रह जाते हैं जिनसे खून गिरता है। ऐसी दशा में प्रसूता को सीधी लिटा देने पर उसके पेडू में नीचे की ओर कुछ कड़ा मालूम होगा। उसे ठण्डे पानी का मालिश करते हुए मुलायम हाथ से नीचे की ओर दबाने से आँवल निकल जायगा और रक्त बन्द हो जायगा। प्रसूत ज्वर अनेक विकारी द्रव्यों के इकट्ठे होने से होता है। यही सन्निपात का रूप भी धारण कर लेता है। यदि प्रसूता अधिक कमजोर न हो तो शीतल जल से इन्द्रिय स्नान देना चाहिये, वह बहुत शीघ्र और अधिक लाभ पहुँचाता है और यदि रोगी निर्बल हो तो पचास डिग्री तक गरम पानी करके इन्द्रिय स्नान कराना चाहिए। पहले एनीमे से पेट साफ कर फिर इन्द्रिय और पेट का स्नान कराना उचित है। अन्य जितने भी प्रसूतिका सम्बन्धी रोग दिखाये गये हैं वे सब जल-चिकित्सा द्वारा दूर हो जाते हैं।

मानसिक रोग

स्त्री जाति में यह व्यापक रोग हैं। इस रोग में स्त्री का ज्ञान लुप्त हो जाता है। शरीर के सब अँग जकड़ जाते हैं गला बँध जाता है, वह कभी खिलखिला कर हँसने लगती और अभी रोने लगती है। बहुत से जड़मति मूर्ख इसे भूत-प्रेत का आना कहते

चिकित्सा

इस मानसिक रोग का इलाज करने के लिए मनुष्य को धैर्य के साथ जल चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए भाप स्नान, पेट स्नान, इन्द्रिय स्नान, भोजन व्यवस्था सभी जल चिकित्सा प्रकरण में ही आ चुकी है। उसी के अनुसार व्यवहार करने से निश्चय सब रोग निवृत्त हो जायँगे।

जङ्गम विष

पागल कुत्ते या स्यार का काटा हुआ मनुष्य कठिन से बचता है। यदि इलाज न किया जाय तो वह पहले पागल हो जाता है और पीछे मर भी जाता है। जिस स्थान पर कुत्ता या स्यार काटता वह स्थान आग के समान जलने लगता है। यही उस विष का प्रभाव होता है।

शहद की मक्खी या बर्रे के समान अनेक ऐसे जीव होते हैं जिनके काटने से, काटा हुआ स्थान सूज जाता है जिसमें बड़ी जलन और पीड़ा होती है। ऐसे प्राणियों के विष यद्यपि प्राणघातक नहीं होते तथापि कभी कभी असावधानी से काटे हुए स्थान पककर सड़ जाते हैं। इनका विष किन्हीं-किन्हीं को बड़ा चढ़ता है।

सर्प और बिच्छू का विष बड़ा भयंकर होता है। बिच्छू का विष यद्यपि प्राणनाशक नहीं होता तथापि बड़ी पीड़ा पहुँचाता है। बाज़-बाज़ बिच्छू प्राणघातक भी होते हैं। पानी के समीप रहने

वाले सर्प अधिक जहरीले नहीं होते। इनका विष जल्द दूर होता है। उष्ण प्रधान शुष्क देश के सर्प बड़े जहरीले होते हैं। इनका काटा मनुष्य विरला ही जीता है।

चिकित्सा

उपचार करने चाहिएँ, क्योंकि इन दोनों के विष का प्रभाव समान ही होता है। किन्तु सर्प की चिकित्सा में कुछ विशेषता करनी पड़ती है। सर्प जहाँ पर काटे उस स्थान के कुछ इधर उधर दूर पर किसी मजबूत रस्सी से बाँध देना चाहिए जिससे विष अधिक दूर तक फैल न सके बाद को उस बँधे हुए अँग को ठण्डे जल में डुबा दे और वस्त्र से नीचे की ओर को घर्षण करे। घण्टे-घण्टे पर नाद का पानी बदलता जाय। इस प्रकार करने से विष का प्रभाव बहुत कुछ कम हो जायगा।

जब मनुष्य स्वस्थ दिखायी दे उस समय उसे भाप का स्नान दे। इससे शरीर के भीतर फैला हुआ विष भी पसीने द्वारा बाहर आ जायगा। तत्पश्चात् फिर शीतल जल से सम्पूर्ण स्नान कराये और पेट तथा इन्द्रिय का स्नान भी कराना चाहिए। जिस स्थान पर सर्प ने काटा हो उस स्थान पर स्नान के बाद गीली मट्टी की पट्टी बाँधनी चाहिये। यदि अधिक विष का प्रकोप हो तो सारे शरीर पर गीली मीट्टी चढ़ा देनी चाहिये। सर्व-स्नान, पेट तथा इन्द्रिय स्नान के साथ-साथ यह प्रयोग लगातार चौबीस घण्टे करने पर निश्चय कठिन से कठिन विष नष्ट हो जायगा। इस रोगी को शीतल जल बार बार थोड़ा-थोड़ा कर पिलाना चाहिए और एनीमा द्वारा पेट का मल साफ कर देना भी आवश्यक है। एनीमा द्वारा पेट में पानी भरने से भी विष दूर होता है।

भी जब नहीं मिला तब वे लोग निराश मन से घर लौट आये। दूसरे दिन भीम घर पर आ पहुँचा।

भीम को देखकर सभी प्रसन्न हुए पर उसकी आकृति देखकर सभी विस्मित हुए। तब उन्होंने पूछा,—तुम्हारी ऐसी दशा कैसे हुई? तब भीमसेन ने दुर्योधन के कपट द्वारा विष के प्रभाव से लेकर नदी में डालने तक का सारा हाल कहकर कहा, यद्यपि उस समय तक मेरी सारी शक्तियें लुप्तप्राय हो चुकी थीं तौभी मैं थोड़ी-थोड़ी सबकी बात सुनता और समझता था किन्तु सब अंगों के साथ जबान ऐसी ऐंठी चुकी थी कि जवाब नहीं दे सकता था धीरे-धीरे मेरी स्मृति कमजोर पड़ गयी फिर मुझे मालूम नहीं क्या हुआ। जब मुझे होश आया तब मैंने अपने को गीले बालू में लिपटा पाया। शनैः शनै मुझमें शक्ति का सचार होने लगा। कुछ घण्टों में जब मैं चलने योग्य हो गया तब चल पड़ा। यह ऐतिहासिक सत्य घटना है, इससे स्पष्ट जल और मट्टी के प्रयोग से स्थावर विष का विनाश पाया जाता है।

शीतला रोग का कारण

यह रोग अधिकतर बच्चों को होता है और बड़ी अवस्था वालों को कम। यह रोग मातृ दोष से सम्बन्ध रखता है इससे इसको शीतला माता भी कहते हैं। जब बच्चा गर्भ में रहता है तब माता के लाद की गरमो का प्रभाव उस पर पड़ता है। गर्भा-

बड़े पड़ जाने से कुरूपता आ जाती है। यदि उसके दाने पूर्णरूप से बाहर निकल आते हैं तो रोगी को विशेष हानि नहीं होती और यदि पूरे न निकल कर भीतर चले जाते हैं तो अवश्य प्राण ले लेते हैं। खुजलाते हुए दाने भी कभी कभी विषैले होकर प्राण घातक हो जाते हैं। शरीर के जिस अंग मे अधिक विष होता है उसी में माता का प्रकोप होता है। यदि सब देह में दोष परिपूर्ण होता है तो सब शरीर फल आता है।

चिकित्सा

रोगी का कमरा अलग रहना चाहिए। वह हवादार, स्वच्छ, लिपा पुता हो उसमें कोई सुगन्धित वस्तु जलती रहे। रोगी के नीचे और ऊपर काले कम्बल हों। जो रोज धो कर बदले जायँ। काले कम्बलों से रोगी को बड़ा लाभ होता है। उसे हाथ से खुजलाने का काम देता रहता है और उससे दाने अधिक फूटने भी नहीं। काले कम्बल के बाल विष को प्रतिक्षण दूर करते रहते हैं। कंबलों के साथ उसके पहनने के कपड़े भी धो डालने चाहिएँ।

एनीमा द्वारा पेट का मल साफ कर दे। रोगी का बलाबल देखकर दूसरे तीसरे दिन भाप स्नान देकर ठण्डे पानी का स्नान देना चाहिये। दो वा तीन बार दिन में पेट स्नान और इन्द्रिय स्नान दे तथा अन्य स्नानों के अतिरिक्त पेट और पेडू पर गीली मट्टी भी बाँधनी चाहिए। इस रोग में उपवास अधिक हितकर है। जो उपवास न कर सके तो फलों का रस या गाय बकरी का दूध

कारण और चिकित्सा

यह रोग माता पिता के वेश्यागमन व्यभिचारादि दोषों तथा अपने दूषित व्यभिचारादि से भी पैदा होता है। अथवा कुष्टी के उच्छिष्ट भोजन-छादन के सेवन से भी इसकी उत्पत्ति होती है। तथा तीसरा कारण है, कोष्ट मल के अत्यन्त सड़ने से जो गरमी उत्पन्न होकर सारे शरीर को फोड़ डालती है। लोग इस रोग को असाध्य समझ कर इलाज नहीं करते। हाँ कष्टसाध्य अवश्य है, किन्तु सर्वथा असाध्य भी नहीं है। यही क्या, जितने भी संसार भर के रोग हैं सब उपवास-चिकित्सा, जल-चिकित्सा, मिट्टी आदि के प्रयोगों से निर्मूल हो सकते हैं। चिकित्सा समय चाहती है, रोगी लम्बे काल से घबड़ा जाते हैं। इसी लिये साध्य रोग भी असाध्य हो जाते हैं। ध्यान रहे वंश परम्परा गत आये हुए असाध्य रोग भी बारह वर्ष तक लगातार उपरोक्त चिकित्सायें की जाने पर रोग नाश कर कायाकल्प कर डालती हैं। इस लिये विश्वास और धैर्य के साथ रोगी को मन लगाकर जब तक रोग समूल नष्ट न हो जाय तब तक उपरोक्त चिकित्साओं में से कोई चिकित्सा अवश्य करता रहे। परमपिता परमात्मा की अपार कृपा से वह अवश्य निरोग होकर स्वास्थ्य लाभ करेगा।

शामित्योम्

९—तमाखू, बीड़ी, सिगरेट, गाँजा, चरस, भाँग, शराब चाय, काफ़ी आदि जितने मादक द्रव्य हैं, इनका भूलकर कभी सेवन न करे। ये उत्तेजना और स्वास्थ्य बिगाड़ने वाले हैं।

१०—जब तक पहला भोजन अच्छी प्रकार हज़म होकर पेट साफ न हो जाय तब तक दूसरा भोजन कभी न खाय। इस प्रकार करने से कभी पेट खराब नहीं होगा।

११—जिनकी पाचन-शक्ति निर्बल पड़ गयी हो वे निरन्तर गदरे (अधवचरे) फलों का सेवन करें। उनमें फिर यथार्थ शक्ति लौट आयगी।

१२—फलों के पूर्ण पक जाने पर उनमें शक्तियों का ह्रास आरम्भ हो जाता है अतएव स्वास्थ्य के लिये गदरे अर्थात् अधपके फल ही अधिक लाभदायक हैं।

१३—बथुआ, सोआ, पालक आदि हरे शाक-पात सूखे आलू लौकी आदि की अपेक्षा अधिक शरीर-पोषक और हितकर होते हैं। छिलकेदार तरकारी अधिक लाभदायक होती है। हरएक शाक को मन्द २ आँच से अपने ही पानी में गला देना अच्छा है।

१४—दिन में थोड़ा-थोड़ा कर अनेक बार जल पीना चाहिए। जिसका कुल परिमाण तीन सेर तक होना उचित है।

१५—भूख प्यास लगने पर भोजन और जल का सेवन अवश्य करना चाहिए। अन्यथा स्वास्थ्य बिगड़ता है।

१६—पाखाना, पेशाब, जम्हाई, नींद और छींक रोक देने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

१७—प्रतिदिन सबेरे और शाम को पाखाना जाना चाहिए और दो बार भोजन भी करना चाहिए।

१८—नित्यप्रति सबेरे चार बजे उठना, और रात को नौ बजे सोना चाहिए। इससे स्वास्थ्य वृद्धि होती है।

१९—सबेरे बासी मुंह पानी पीकर कुछ देर टहलना चाहिए और फिर शौच दन्तधावन स्नान से निवृत्त होकर, बाहर वायु सेवन के लिये निकल जाना सर्वोत्तम है। चलने में इतनी तीव्रता हो कि अंग-प्रत्यङ्ग में पसीना आ जाय। किसी शुद्ध स्थान पर खुली हवा में बैठकर सन्ध्या और प्राणायाम करना चाहिए, तत्पश्चात् घर में आकर सूर्योदय के साथ-साथ हवन कर डाले।

२०—ताजा और सादा भोजन अच्छा है। बासी और गरिष्ट भोजन स्वास्थ्य बिगड़ता है।

२१—बत्तीस अथवा चालीस ग्रास से अधिक भोजन नहीं करना चाहिए। चाहे कितना ही स्वादिष्ट भोजन क्यों न हो।

२२—किसी भी ऋतु में मुंह ढककर न सोना चाहिए। श्वास सदा नाक से ही लेनी चाहिए, मुंह से नहीं।

२३—स्नान के समय सबसे पहले सिर धोकर फिर सर्वाङ्ग स्नान करें। इससे आरोग्यता और बुद्धि बढ़ती है।

२४—पानी हमेशा ढांक कर रखना और छान कर पीना चाहिए

२५—अनपच या पेट का दर्द दूर करने के लिये ताजा अथवा गरम जल परम औषध है।

२६—रहने का मकान हमेशा हवादार और स्वच्छ होना चाहिए। नंगे शरीर शुद्ध वायु सेवन से अनेक रोग दूर होते हैं।

२७—नियमित आहार-विहार करनेवाला कभी रोगी नहीं होता और हो भी जाय तो शीघ्र स्वस्थ हो जाता है।

२८—रोग, अग्नि और ऋण ये शेष रहने पर बढ़ते ही जाते हैं। इस लिये इनको कभी शेष न रहने दे।

२९—"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयेः" मनुष्यों का अपवित्र मन बन्धन का हेतु है और पवित्र मन मोक्ष का कारण है। कामदेव को मन से उत्पन्न होने के कारण ही मनोज या मनसिज कहते हैं। वह यदि अपवित्र मन में पैदा होता तो मन, धन सभी को बरबाद कर देता है और स्वच्छ मन में पैदा होकर वही धार्मिक सन्तान भी पैदा करता है। मन के पवित्र विचार कामदेव को भस्म कर देते हैं। इस लिये कामदेव हमारा परम शत्रु है। वह सम्पूर्ण व्याधियों का घर है। इस लिये सद्विचारों द्वारा उसका विनाश कर अधिव्याधियों से छुटकारा पाना चाहिए और स्वच्छ मन को मोक्ष का साधन बनाना हमारा परम कर्त्तव्य है।

स्वास्थ्य-रक्षा समाप्त